

साहित्य हृदय

प्रथम भाग



कान्यं पृच्छाम सुधा स्वर्गे निवसामो वयं भुवि ।
किम्वा काव्य रसः स्वादु किंवा स्वादीयसी सुधा ॥

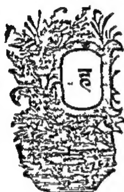
रचयिता

उपाध्याय श्रीहरिश्चन्द्र शर्म्मा

सम्पादक

नर्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय
एम ए एल एल बी

हमारी मसहरी



मारी मसहरी कलियुग की तपोभूमि है, जहाँ मसा और मक्षिका राक्षसियाँ बाहर ही सिर पीटती रह जाती हैं और हमारी भावनाओं की वृहत् हाट में या ध्यान के प्रशान्त लोक में कुछ भी बाधा नहीं पहुँचा सकतीं। अथवा यह कृत्रिम हालेण्ड की भूम सी है जिसके बाहर ही मसा मक्षिका समूह समुद्र की घनी लहरें इसके आवरण बांध से टकराती हुई विचित्र सुहावने शब्दों को सुनाती पर मजाल नहीं की उनकी मौजें भीतर प्रवेश पा सकें, या यह मानव शरीर का द्वितिय पिञ्जर या कवच है या चञ्चल मन के एकाग्र करने का एक विचित्र योग यन्त्र है, या इस अशान्त लोक में एक कृत्रिम शान्त स्थली है, जहाँ भक्त मकरा चारों ओर से जालों की चद्दरें तान, स्वस्थ मन बीच में बैठा मसा मक्षिका रूपी माया से कहता है कि न तू मेरे जाल में फँस और न मैं तेरे में फँसूँ, या यह हमारी ज्ञान कोठरी है या यक्ष का एक कृत्रिम गृहस्थ योगी का प्रशान्त गह्वर है या किसी राजर्षि के तपोवन की शान्त कुटी है या किसी प्रतापी क्षिति पाल का राज्य है जहाँ यज्ञों में बाधा नहीं पड़ती या वायु को छान कर पीने का उत्तम विधान है, या भारत के निकटस्थ नेपाल

होगी ? काम क्रोध लोभ इत्यादि नरक ले जाने वाले चाण्डालों से तेरी प्रीति कैसे छूटेगी ? इस निर्मल आनन्द स्वरूप आत्मा के दिव्य गृह को छोड़ तू कैसे अन्यत्र रम सकता है ? इस क्षणिक भ्रान्तिमय सांसारिक सुख का उपभोग कर तूने कितनी वराटिका उपलब्ध की, यदि उसके पीछे अनेक दुर्गति नहीं भोगी है ? क्या तू नहीं समझता कि अहर्निश श्वानवत हर विषय गृह में भरमने से सिवा लात खाने के और क्या परिणाम सम्भव है ? देवगणों को छोड़ तू राक्षसों के साथ सहवास कर भला कैसे सुखी और शान्त हो सकता है ? इसपर वह लज्जित हो कहता, कि स्वभाव का परिवर्तन धीरे धीरे सम्भव है, क्योंकि जो स्वच्छन्द वृषभ सा अहर्निश विषय-क्षेत्र में चरता था वह ज्ञान के दुर्बल कच्चे सूत से एकाएक कैसे बाँधा जा सकता है कभी ज्ञानी कागभशुण्ड को बुलाते कि वे सप्रेम भगवान रामचन्द्रजी की कथा सुनावे, जिसमें कि वह मोह जिसने कि नारद का स्वरूप मरकट कर दिया, और मयङ्क को सदा के लिये लाञ्छित बना, नित्य घटने बढ़ने के महादुःख का भागी किया और भगवान् इन्द्र के कमल से शरीर को अनेक योनि चिह्नों से ऐसा कुरूप और कुत्सित कर डाला कि जिसे देख सब देवताओं ने खिल्लियाँ उड़ाईं, जिसने गरुड को प्राकृतिक पक्षी बना, काक से नीच के समक्ष भी विनीत भाव से ज्ञान भिक्षा का प्रार्थी बनाया, मेरे हृदय से सदा के लिये दूर हो जाय, कभी गीत गोविन्द की अष्टपदी में भगवान कृष्ण की मुरली के सरस तान को अद्यावधि ग्रामोफोन सा यन्त्रीकृत देख श्री जयदेवजी को सहस्रों आशीर्वाद देता, कभी भक्ति सलिल से सम्पन्न हृदय भक्तों के मौलि मुकुट सूर से ज्ञान की प्रिय निन्दा सुनते और मनहीमन हँसते, और कभी कह बैठते कि ज्ञानी ऊधो का ज्ञान

गोपिकाओं के समक्ष ऐसा हुवा न हो जाता यदि वे जानते होते कि भक्ति मान की उत्कृष्टावस्था है, और कौन जाने कि भगवान कृष्ण ने उन्हें यही सीखने के हेतु वहाँ भेजा हो, कभी लम्बी सफेद दाढी वाला ज्ञानी मग्गह का जुलाहा से, सारे पुराणों की खिल्लिया उडाते मिलना, कभी भगवान ॐकार के सहस्रों तीर, भक्ति-धनुष पर रख उपासना विष में बुझा, माया के सहस्रों पदातिओं पर अनवरत शर वर्षा करते हुए देखते, कि तब भी वे रक्त-बीज राक्षस सा बढ़ते ही चले जाते है, कभी असंगशस्त्र से अन्तःकरण वाटिका से विषय भावनाओं के वृक्षों को समूल उच्छेदन कर, सयम और नियम की बृहत् लाईसन, विवेक वैराग्य के अमृत फल वाले वृक्ष आरोपण कर, जप जल से सींचते, कभी प्राण दोलना पर इस चञ्चल मन बालक को झुलाते, कभी जब समझता कि इतने दिन टेरते हो गये पर सरकार ने एक दिन भी दर्शन न दिया, तो अन्तःकरण मे अग्नि भभक उठती और मैं आकाश को अपनी सीरी उसासो से भर देता कभी यह जान कि वे सब ठौर वर्तमान है, सहस्रों मनमानी बातें करते करते अपने को विस्मृत कर जाता, कभी उनको सहस्रों नाम से पुकारता। निदान इसी भाँति इस छोटी सी मसहरी म अनेक भावनाओं की हाट लगती और उजडती।

किसी विपिन के मध्य में आखेट में भटकते हुए एक महाराज से किसी महात्मा से सम्मेलन हुआ। इनके आतिथ्य पर प्रसन्न हो राजा ने महात्मा से कहा कि कृपा कर आप मुझसे कुछ मांगिए, हठ करने पर महात्मा ने कहा कि आप कृपा कर इस जङ्गल से मसा और मक्षिकाओं को सदा के लिये बाहर निकाल दीजिये, इसपर राजा हँस कर कहने लगा कि यह मेरे सामर्थ्य

के परे है, कोई दूसरी माँग माँगिये जो मैं दे सकूँ। उन्होंने दूसरी माँग यह माँगी कि आप यहाँ से शीघ्र चले जाइये। यदि इस नृपति को मसहरी मन्त्र याद होता तो वह ऐसा मूफट न लौटता। ऐसा ही एक धनी ने किसी डाक्टर से मसा और मक्षिका से पीड़ित हो प्रतीकार पूछा। विचक्षण डाक्टर ने अपनी उच्चातिउच्च फीस को धीरे से वसूल कर अपने पाकेट में रख ली, तब धनी के कानों में मसहरी मन्त्र फूँक दिया, जिसे सुन उक्त धनी कुछ काल पर्य्यन्त विमुग्धावस्था को प्राप्त हो गया।

मसहरी सांसारिक जनों को छिद्रमय निज शरीर से यह दृष्टान्त दिखाती है कि यदि वे भी अपने हृदय को चोरघर न बना रक्खेंगे तो उनमें भी मसा मक्षिका सी माया न प्रवेश पा सकेगी, और यद्यपि यह जड़ और अशक्त है पर तब भी निज शक्ति के अनुसार कार्य्य करती हुई लोगों को कर्म का प्राधान्य दिखलाती है।

हमारी दिनचर्य्या



सकल लोक को तुल्य निवास देने वाली, बादशाह वा योगी, धनी वा दरिद्र, दु:खी वा सुखी, स्वच्छन्द वा पराधीन सभी को अपने रूप को विस्मृत कराने वाली, प्रलय के द्वितीय दृश्य सा दिखाने वाली, उस सर्व साक्षी, सर्व चेता, केवल निर्गुण स्वरूप आत्मा के वैभव को प्रगट करनेवाली, चिन्ता पूरित मनुष्य से दूर भागनेवाली, महीपतियो से क्रीडा करने वाली, कृषको तथा मजदूरों को गले से लिपटा कर सोने वाली, आंख उभलने पर प्रेमियो के पलक रूपी गृह को त्याग अनत बसनेवाली, व्याधि पीडित मनुष्यों को दूर ही से खडी ललचानेवाली, निद्रा का हम उस समय त्याग करते हैं जिसे ऊषा वा सतयुग का समय या ब्राह्म मूहूर्त कहते हैं। इसी समय उस परम शुभ्र निर्मल, चैतन्य धाम का कपाट खुला रहता है, और मुसलमान कहते हैं कि इसी वक्त खुदा मियां अमन का सदावर्त बाटने को बैठते हैं। यह सच है कि जैसे प्रथम सस्कार और प्रथम समागम मनुष्य को आजन्म नहीं भूलते, वैसे ही यदि इस काल में ईश्वर का ध्यान कीजिये तो वह सुख, जिसमें कि इतर माया प्रयच्छिन्न सुखो

का तिरस्कार कर मनुष्य अपनी आत्मा में स्वस्थ भाव से बैठता है, दिन भर याद रहेगा।

जब भुजङ्गी ठाकुर जी के नाम को बारबार जपती और अप्सरा प्राची से कहती कि तुम अपने अखिल शृङ्गार से सुसज्जित हो मुस्कुराओ क्योंकि तुम्हारे प्राणप्रिय प्रभाकर पश्चिम समुद्र का वाणिज्य कर, अब कुछ काल के लिये तुम्हारे अङ्क में विश्राम लेंगे। अथवा जगत जनों से यह कहती कि यदि हमारी तरह तुम भी नामरूपी-अमृत का सतत पान करोगे तो जैसे मैं प्रबल बाज और शिकराओं को चोंच से मार अपने सिवाने से बाहर निकाल देती हूँ, वैसे ही तुम भी मृत्युरूपी संशय विकार को अन्तःकरण से बाहर निकाल सकोगे, वा यह कहती कि जप-यज्ञ तो एक प्रकार का कृत्रिम समीर है जो श्रद्धा अग्नि को जगाता है और नाम ही केवल इस कलियुग में भवसागर का महासेतु है, वा वैषयिकों से कहती कि अब अपनी प्यारी के वलम्बल स्वर्ग को छोड़ घर लौटो नहीं तो लज्जा के बेंतों का स्वाद चखोगे, जिसे सुन कर अभिसारिकाएँ एकाएक विछोहकारी ज्वाला-नल समुद्र सा अपर-दिवसका ध्यान आते ही काँपने लगती, स्वकीयाओं से कहती कि वे अब अपने प्राण प्रिय पति की सेज को छोड़ गृह के अनेक कर्म्मों को सम्हाल सुगृहिणी के प्रिय विशेषण की भाजन हों, और व्याधि पीडित मनुष्यों को तो विधि के वैद्य सी मानो उपदेश देती।

ऐसे समय में प्राची दिशा की अलौकिक शोभा को निरखता प्राय अपने तख्त पर बैठा सराहा करता हूँ। वह जो अरुण बादलों से घिरी स्वर्ण की नदी सी प्राची में दक्षिण से उत्तर को इस समय प्रवाहित सी हो रही है जान पड़ती है कि ईर्षा

सूर्य्य ने भागीरथी के अद्वितीय अहंकार को नष्ट करने के लिये यह रचना की है। अथवा युधिष्ठिर से भी किसी अधिक धर्मात्मा ने अपने तपोबल से किसी काञ्चन नगर को उद्धूयमान कर स्वर्ग में जा बसाया है वा पूर्व-आकाश-समुद्र के वरुण का यह सत्यत स्वर्ण का प्रकाण्ड स्टीमर है या सूर्य्य लोक की आकाश गङ्गा है या भगवान सूर्य्य के भेजे हुए ये विजयी पदाती हैं जो समूह बद्ध हो अन्धकार को धीरे धीरे छिन्न भिन्न करते हुए अरुण शिखाओं की तुरही को सुन, वेग से आगे बढ रहे हैं और बिचारा अन्धकार चारो ओर छिपता भागता, काकों की कार्य कायँ के मिस प्राण भिक्षा मांग रहा है, जिसे सुन दयालु सूर्य्य, नाश करने के बदले उसे पहाडों के गहिरे खोहों और समुद्र के अन्त करण में रहने की आज्ञा देते। इस दयामयन्याय को देख सारे पक्षीगण आर्द्र हृदय हो जय जय उचारने लगते जिसको सुन भगवान भास्कर मारे प्रसन्नता के अरुण हो जाते।

ज्योंही वैश्वानर विश्वरूप सहस्र-रश्मिवाले प्रजा के प्रति पालक सूर्य्य भगवान ने अपने अमल शुभ्र आनन को बाहर निकाला, त्योंही सब महर्षियों, नैष्ठिक ब्रह्मचारियों तथा ब्राह्मणों ने अनेक श्रुतियों को पढ़, जगत् के प्राण सूर्य्य को श्रद्धा पूर्वक अर्घ्य दिया और जब से अगरेजी विद्या का कुलुषित यशहृदय से दूर हो गया है तब से मै भी नियत काल से प्यारे भगवान सहस्र रश्मि को अर्घ्य देने, उपस्थान और प्रणाम करने लगा हूँ। इस प्रकार जब मुझे अपने दैवी कर्मों से छुट्टी मिलती तो कभी तो जगलों में अलख विचरता और वहाँ विहगावालियों की अनेक सगीत सुनता, आत्मा में स्वस्थ आनन्द पूर्वक घण्टों बैठा रह जाता और पत्तों के पतन से मनुष्य के आगमन की शका

कर, कभी कभी आँखें भी खोल देता क्योंकि ऐसे समय में जी नहीं चाहता कि अपवित्र शकामय आँखों से देखा जाऊँ। सामा, बहिगल और दामा के मधुर राग को सुन, देखता कि ईर्षी महोख महाशय भीमसेन सा मारे प्रसन्नता के अपनी लम्बी पूँछ को हिला हिला कर, गाने लगते और सब अच्छे गाने वाले इस दुष्ट विवादी सुर को सुन मौनावलम्बन कर लेते जिस वेतुल फी को देख विचक्षण शुक हँस कर कहने लगता कि भ्राता महोख! तुम्हारी संगीत को सुन तो हमें भी गाने की इच्छा होती है और सत्यत विधि को उलहना देने में अब लज्जा लगती है क्योंकि तुमसे तो उसने हमारा ही स्वर अच्छा बनाया, जिसे सुन कौतुक-प्रिय कोइल कुहू कुहू कर उसे चिढ़ाने लगती। इस दिल्लगी को देख टिटिहरी खिलखिला कर हँस पडती और इस प्रकार अपमानित हो महाराज मारे लज्जा और व्रीडा के कानन के किसी गूढ अन्तर में जा छिपता। वहाँ किलॅहने उसे आश्वासन देते हुये कहते कि मित्र महोख! तुम क्यों ऐसे उदास हो गये हो? चलो, हम अभी एक तान में सब को चुप कर देते हैं और यह कह वे बगालीमाशाओं से आपस में कार्य कार्य करने लगते और सब चिडियायें यह कुचोद्य सुन विविध दिशा में प्राण पूजा के अर्थ प्रस्थान कर जातीं।

कभी उद्यानों में टहलते, जहाँ कि मरकत मणि सम हरित दूर्वा से सम्पन्न सम धरातल भूमि ओस से ऐसी क्लिन्न लख पडती मानो अप्सराओं के रात्रि के महफिल की चद्दर बिछ रही है जिसे अद्यापि सूर्य्य के किरण फर्राश ने झाड़ू दे नहीं हटाया, वा यह कहे कि इन ऊँचे हिम श्रृङ्ग सदृश वृक्षों से यह निर्मल गंगा की धवल धारा पृथ्वी तल पर गिरी है।

जब भगवान भास्कर की सहस्रों किरणें इस अपूर्व

विस्तृत जलकण राशि पर गिरतीं तो ऐसा अनुमान होता कि इन्द्रदेव का विस्मित करने के अर्थ देवी वसुमति ने अपने वक्षस्थल पर इन्द्र धनुष धारण किया है या प्रकृति ताजमहल की दीवार दिखा रही है और कहती है कि यद्यपि चोरों ने उसके दीवार के जटितरत्नों को अपहरण कर लिया तोभी आप इस ठौर उसका प्रतिरूप देख सकते हैं यदि आप आँख वाले हैं। इस तौर पर देखते दिखाते गुलाब बाडी में जो पहुँचे तो देखते हैं कि सबके सब अपने सौन्दर्य्य रूपी उपायन के सहित, पुष्प कोष में ओस जलाञ्जली लिये सूर्य्य को देने के अर्थ खडे हैं, या यह कहें कि सुन्दरियों के रूप की यहाँ प्रशसनीय प्रदर्शनी है, क्योंकि यदि मर्सलिन मिसों सी मोहती तो पालमिरल प्रशस्त प्रौढ़ पजाबिन या प्रकाण्ड मोगलानी वा मोटी गोरीचिट्टी स्थूल काय बडी आँखवाली बगालिन सी, तो बम्बई गुलाब कशमीरिन सा लख पडता और इन सुर्ख मखमली गुलाबों की उत्पति तो ताम्बूल खाये हुई मुस्कुराती सुन्दरियों से जान पडता है क्योंकि कवि ज्योतिषी यही बताते हैं।

अङ्गरेजी फूलों की पंक्तियाँ तो किसी सम्पन्न नगर के जवहिरियों की वीथी सी है। क्योंकि फ्लाक्स यदि लाल की ढेर लगाये हैं तो लार्स्कस्पर ने नीलम की खानि ही खोल दी है जिसे देख पन्नूरहिनम ने जवाहिर की दुकान लगा दी और पेनजो तो इन्द्र सा सहस्रों चक्षु कर इन सबों की शोभा देख रहा है। इस प्रकार अनेक कवितामयी भावनाओं से सम्पन्न उद्यान के किसी कोने में चुपचाप इनकी शोभा को निरखते बैठे रहते, और देखते हैं कि हमी इन पुष्पों के प्रेमी नहीं, वरञ्च पक्षी गण हम लोगों से भी कहीं बढ़े चढे इनके रूप के प्रेमी हैं। क्योंकि देखिये हर एक दस वा पन्द्रह पन्द्रह

मिनट के पश्चात् बुलबुल, दहियर, सामा और पिरोला इत्यादि का झुंड आता जाता देख पडता, जो अपने कौतुक भरे नेत्रों से इनके रूप सम्पत्ति को भली भाँति देखते और कुछ न कुछ उनके रूप की प्रशंसा में सुहावने संगीत गाते, जिसे सुन सारा पुष्प समाज अपने इस अत्यन्त अल्प और अचिर जीवन को भी सफल मानता। भ्रमरों को देखिये तो वे पहिले वैपयिकों से प्रसूनों के रूप की प्रशंसा करेंगे और यदि ईर्षी नायक वायू ने उन्हें निवारण किया तो वे हठात् उनके अन्तःकरण में प्रवेश कर, सारे रस को चूस, उसके हृदय को सन्तप्त करने के लिये सौत से दूसरे प्रसून पर जा बैठते हैं। इस व्यभिचारमयी प्रीति को देख, गन्धहीन पुष्प जिनमें भ्रमर अपना नेह नहीं रखता, अपने हिलने मिस कहते कि हम ऐसे प्रेमियों से पत्र-स्वपेटिका से बातें करते हैं, क्योंकि ऐसे प्रेमियों से तो कुमारी ही रहना भला है। कभी यदि मुझे समय मिलता तो पहाडों के शृङ्गों पर प्रिय प्राची के रूप सराहने और उसकी प्रात कालीन शोभा देखने के अर्थ चले जाते, जहाँ से देखते कि क्षण क्षण में अन्धकार समुद्र से पृथ्वी ऐसी निकली चली आ रही है जैसी आदि में एकाएक सर्व शक्तिमान जगदीश्वर की कृपा से यह रची गई थी, जिस अपूर्व शोभा को देख सुनते हैं कि बहुत से दुष्ट स्वर्गीय निवासी, इसके नाश करने के हेतु, स्वर्ग से अपना पतन समीचीन समझ, इसके निवासियों को निरन्तर दुष्ट मार्ग में प्रवृत करने को घूमा करते हैं। या यह कहें कि सूर्य्य किरिण रूपी महावराह, डूबी हुई इस पृथ्वी का अन्धकार मय समुद्र से उद्धार कर रहा है, या ऐसा समझें कि वसुमति देवी का आनन जो अन्धकार घूंघट से ढपा था, सूर्य्य दुलहा अपने हाथों से हर क्षण में खोल

रहा है ; वा यह कहें कि राक्षस सा लुटेरू अन्धकार जो हम लोगों की दृष्टि रूपी महा सम्पत्ति को हठात् हर ले गया था, प्राणियों के प्राण महीपति सूर्य्य ने उदय होते ही सब, चोरों से छीन छीन कर जिसका जो था, उसे दे दिया। योंहीं देखते दिखाते किसी प्रपात के निकट एक प्रशस्त शिला पर बैठ अपने भागवत कर्म्म को कर, झरनाओं की सैर करता। कहीं तो झरने की चिल्लाहट सुन समझना कि यह पागल सा है जिसे सारे तीरस्थ वृक्ष प्राणी भागने से अवरोध करते हैं और यह देख यह ओर भी क्रोधित हो आगे बढने की चेष्टा कर रहा है ; कहीं ऋषि कुमारी सदृश वन वेलरियों के बीच घूम घुमैया खेलता, कहीं जा वाग्मी पादरी सा अपने तटस्थ वृक्ष महाशयों को ऊँचे स्वर से पवित्र भगवान भूतनाथ के प्यारे हर हर शब्द का उत्कृष्ट आदेश करता, कहीं निकटवर्ती फूली लताओं से रसिकों सा आँखें लडाता, खडा रह जाता, कहीं झगड़ालू लुगाइओं सा ऐसा झरझर शब्द कर झगडा मचाता कि जितने उसके तटस्थ वृक्ष हैं वे अपने हस्त पल्लवों से चुपचाप बुद्धिमान मनुष्य सा मानो कहते कि तू कृपा कर अपनी राह ले, कहीं चिकने चट्टानों पर घुडदौड की दौड लगाता, कहीं मध्य में जगली जामुन आदी वृक्षों के उपजने से सहस्रधा हो ऐसा चिल्लाता कि मानों अपना मार्ग भूल गया है, ओर चौकन्ना हो चारों ओर घूमता ओर चिल्लाता, मानो तटस्थ वृक्षों से मार्ग पूछ रहा है, कहीं ऐसा घर घर शब्द करता जैसे किसी राक्षस महीपति के गृह विवाह हो और सैकडो चुडइल और डाइनें बेगार में चना, मटर आदी अन्न दल रही हो, कहीं ऐसा साँय साँय शब्द करता मानो जिन्नातों का मेला है, जहाँ सैकडों हलवाई छमछम पूरियां छान रहे हैं। इस प्रकार देखते दिखाते उस ठौर पर जा पहुँ-

चला जहाँ से वह सदा के लिये अपने पिता पहाड को छोड़, मारे शोक के चिल्लाता हुआ, पृथ्वी तल पर बेहोश गिरता है, जैसे कोई महीपति इस लोक में बडी ऊँची पदवी और कीर्ति को प्राप्त कर, अत्यन्त लोभ और असतोष के कारण विधि के विधान से अध. पातित हुआ हो और एकापक उसकी आँखें विपत्ति विधा से खोल दी गई हों। क्योंकि अब देखिये, फेन पुञ्ज से धवलित इसका अन्त.करण कैसा शुद्ध और शान्त हो गया है, या यह कहें कि यह झरना, पहाड ससार के झंझटों से वितृष्ण हो अब अलग भागा चला जा रहा है। इस प्रकार कवितामयी भावना-सम्पति से सम्पन्न हो गृह को लौटते और इस वैश्वानर रूपी अग्नि को रूखी सूखी आहुति दें कुछ काल के लिए निद्रा देवी को आह्वान करते हैं।

जब सन्ध्या पक्षी वकील टोमसन के अपनी चोंच को बढ़ाती चली आती और हर एक क्षण में सैकडो दृश्य अपने उदर में गटकना आरम्भ करती है और जब सारे दिवस की यात्रा से थकित गात्र पूजनीय भगवान सहस्ररश्मि शयन के हेतु पश्चिम समुद्र को प्रस्थान करते और मातरिश्वा भृत्य सा धीरे धीरे व्यजन करता और सब पक्षीगण उनके सुलाने के लिये अनेक संगीत गाते हैं, मैं भी ऐसे समय में सन्ध्या की शोभा निरखने के हेतु वर्डसवर्थ सा पश्चिम देवी से आँख लडाता, सकल विश्व को विस्मृत करता हुआ, उस दिशा को प्रस्थान करता हूँ। सूर्य्यास्त के पश्चात् पश्चिम दिशा कुछ ऐसी अपूर्व शोभा को धारण करती मानो वह रात्रि देवी की विजय लक्ष्मी है, या भगवान सूर्य्य के भगे हुए किरिण पदातिगण अन्धकार वैरी से बन्दी कृत हैं, जिस दुख को देख पक्षी हाहाकार शब्द मचा रहे हैं, और तपस्वी ब्राह्मण इन तृषित पदातियों को जल से सतुष्ट

कर रहे हैं, या यह कहैं कि भगवान् कुबेर ने पश्चिम आकाश में मानो सोने की खानि खोल दी है और देखो यह अनेक बादल रूपी देवगण अनेक वर्णो के मणियों को अपने शिरो पर, उनके परिपूरित कोष को और भी अपार कर देने को, लादे लिये जा रहे हैं या यह कहैं कि अब इन अवशिष्ठ किरणों को जो पश्चिम में देख पड रही है जान पडता है कि विजयी विश्वेश्वर ने विश्व की रक्षा हेतु इन्ही थोडे पदातियो को छोड दिया है जिसमें ये नक्षत्र बन सारे आकाश में फैल, सावधानी से इसकी रक्षा करें। इन सब पदातियो के सेनापति ने पूर्व दिशा में जो अपने निर्मल प्रफुल्ल आनन को दिखलाया, तो धीरे धीरे सब नक्षत्र-पदाती आकाश मण्डल में फैल चले, और वह ऐरावत सा स्वयम् बादल जगल को चीडता फाडता उसमें घुसा चला जा रहा है, या यो कहैं कि आखेट प्रिय कलानिधि बादल मृगों के हनन के हेतु अपने किरण तीरो को सन्धान किये लपका चला जा रहा है, या यह समझें कि श्वेत स्टीमर कलानिधि धीरे धीरे बादल बरफ को आकाश समुद्र में काटता छाँटता निकला चला जा रहा है, या हनुमान सा पहाड के एक शृङ्ग से दूसरे शृङ्ग पर कूदता लखाई दे रहा है, या बादल अरण्य में पथिको सा ऐसा छिप जाता है जैसे हम सब की आत्मा अविद्या तिमिर में छिप जाती है। कभी कामिनियों सा अपने निर्मल आनन को दिखा फिर व्रीडा और लज्जा से घूघट ढँक लेता और पुन कुछ काल के लिये प्रगट हो मुसलमानी माशूकों सा सब के हृदय को अपहरण कर, आशिको को विस्मित करने के लिये बादल कपाट को बन्द कर, मुस्कुराता ललचाता भीतर चला जाता है।

यदि यह जगत गन्धर्व लोक है तो चाँदनी रात्रि में ; यदि

भी ऐसे ऐसे प्रसून मिल सकते हैं, और ऐसी पथरीली भाषा में भी इनकी कविता की धारा प्रवाह गङ्गा सी पवित्र है, और लख-नऊ की वारवनाओं के नाच के तोडा सरीखी मनोहर है। क्योंकि ये भी आपके हृदय को पैर के हिलाने के साथ ले चलेंगी और कर्णों को अपने मधुर घूंघरो की भनकार से वश किये रहेंगी जिससे आपका मन सिवाय उनकी ओर के और कहीं भटकता न देख पडेगा। कभी बेकन और इमर्सन की गम्भीर गिरा के भाव समझने में मस्तिष्क विघूर्णित करता, कहीं पडोसन के साथ रिझियां उडाता, तो कभी वर्डसवर्थ के साथ जा देवी प्रकृति को सराहता, कभी वाइरन के दुःख को देख, काऊपर के स्वस्थ अन्त करण को सराहता और कभी इन महाशय के साथ चिमनी के सन्निकट वैठ इनके अनेक सहज सुख की कथा सुनता। कभी जयदेव जी के साथ श्रृङ्गार कुञ्ज में जा भगवान् कृष्ण की सुरीली सरस वशी से कर्ण और अन्त करण को पवित्र करता, तो कभी कालिदास के अद्भुत श्रृङ्गार रस के अपूर्व वैलक्षण्य को देख शेक्सपियर से भी इनको उत्तम इस रस में समझता, कभी वाल्मीक के साथ भगवान रामचन्द्रजी के दर्शन को जाता और वहाँ अनेक महर्षियों को प्रणाम करता। इस भाँति इस अमूल्य जीवनी की दिनचर्य्या होती और ईश्वर के कृपा से विना विषय देवी के किंकर हुए ही नित्य नये उत्सव देखता हूँ।

आनन्द

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन्।



जितने प्राणी इस भूलोक में हैं प्राय सभी आनन्द के भूखे और प्यासे पाये जाते हैं। मनुष्य तो कहता है कि आनन्द वा मगल की घडी कृपण विधि बडे भाग्य से देता है, यद्यपि यह मन पपीहा सा स्वाती के बूंद समान पूर्ण आनन्द की प्रार्थना वा याचना घनश्याम से अहर्निश किया करता है, और यथाशक्य प्रयत्न करता है कि वह, आनन्द और उल्लास के ऊँचे आसन पर सुमनस्क स्थित हो जाय और उससे च्युत होने की विपत्ति को न देखे, अथवा सदा आनन्द नदी के पुनीत कूलों ही पर विचरा करे। दिवाने दिल परमात्मा से प्रार्थना किया करते हैं कि आँख जब देखें आनन्द ही को देखें, जब विचरैं तो सदा रूप ही के अपूर्व सुहावने कानन में, शब्द भी सुने तो सदा मगल और आनन्द ही के। हम सब कुछ ऐसे ही आनन्द के भिखारी हैं। बादशाह शहनशाह राजा बाबू छोटे बडे सभी इस दर्बार के आश्रित हैं। उस परात्पर परमेश्वर की कीर्ति सगीत को गाने वाली भगवती उपनिषद् देवी कहती हैं कि यह मनुष्य यदि पत्नी का पाणिग्रहण करता है तो अपने अनेक

सुखों के अर्थ न कि उस स्त्री के सुख के लिये, यदि पुत्र की कामना करता तो वह अपने अनेक कामनाओं की पूर्ति के लिए, न कि पुत्र के लिए, योंही यावत् कुछ वह संग्रह करना चाहता या व्यापार करता है वह उस वस्तु के अर्थ नहीं किन्तु अपने सुख और स्वार्थ के हेतु। निःसन्देह यह आत्मा ऐसा ही अपने सुख और आनन्द का स्वार्थी है।

यावत् मनुष्य हैं उन सब के आनन्द और सुख के देश प्रायः निराले हुआ करते हैं, यानी विद्वानों के आनन्द और रमने का देश दूसरा है और मूर्खों का दूसरा, यती और ज्ञानी के ठौर दूसरे हैं और विषयी वा सांसारिक मनुष्यों के दूसरे, प्रेमियों के आनन्द का देश दूसरा और श्वेत कुन्तल वाले बूढ़े वेदान्तियों का दूसरा। जहाँ विद्वान् ज्ञानी और भक्त रमते हैं वहाँ से विषयी दुखी और त्रस्त हो गीदड़ सा भागते हैं, और जहाँ विषयी और सांसारिक जन रमते और अपने को कृतकृत्य मानते हैं उस स्थान की वायु भी ज्ञानीजन सहन नहीं कर सकते। यदि उदार अपने उपकार और सद्व्यय से अपने को कृतकृत्य मान सन्तुष्ट और सुखी होता तो कृपण जन धन को व्यय से बचा अपनी बुद्धि और दाक्षिण्य पर अत्यन्त मग्न होता। सारांश यह कि जैसा जिसका संस्कार और बुद्धि होती है उसी के अनुरूप ही उसके आनन्द का विषय भी हुआ करता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने आनन्द को तीन भागों में विभक्त किया है, अर्थात् सात्विक राजसी और तामसी। तामसी आनन्द के उपभोक्ता और प्रमाणों में शहाबुद्दीन, तेमूरलंग, नादिर, औरंगजेब, मैकबेथ, रिचर्ड थर्ड, जान, आदिक हुए हैं जिनके कौर्य्य की कहानी को अब भी रोता हुआ उदास मन बूढ़ा इतिहास सुनाता है। देखिये पुरातन ग्रीस का यह

कैसा निर्दय नृपति था, जो नगर को फूंक फ़र हँसता, हथेली बजाता और दूसरे का सर्वनाश कर देने पर, अपने घर उत्सव मनाता था, जिसका नाम इसलिए कि कविता देवी की जिह्वा पर फफोले न पड जायँ, न लेंगे। ऐसे ही बहुत से लोग इस दुष्ट तामसी आनन्द के उपभोक्ता हुए हैं। यह खेद का विषय है कि ऐसे पुरुष इस लोक के बडे महोदयगण ही हुए हैं, क्योंकि गरीब बेचारे को इस निकृष्ट आनन्द के देखने और भोग करने का दुष्ट अवसर विधि नहीं देता। इस आनन्द के उपभोक्ता लोग प्राय स्वयम् रोते और दूसरो को रुलाते हैं, और प्राणियो के अन्त करण को तपा कर स्वयम् तपते हैं। यद्यपि इस आनन्द के आदि में दु.ख और अन्त में भी दु ख है, किन्तु बहुतेरों की ऐसी तामसी और विपरीत बुद्धि होती है कि यद्यपि वे नित्य प्रति अनेक दु:ख और कष्ट झेलते हैं, पर तो भी विराम न कर, मारे क्रोध के इस आनन्द प्राप्ति से अपना सिर टकराते ही चले जाते हैं, चाहे उनका मस्तक सहस्रधा भग्न क्यों न हो जाय। इस आनन्द के अधिष्ठाता प्राय क्रोध और क्रौर्य्य ही हुआ करते हैं। विचक्षण विज्ञानी लोग ठीक ही कहते हैं कि तामसी आनन्द के उपभोक्तागण निश्चय उस जन्म में भेडिये, गीदड, व्याघ्र वा कोई हिंसक पशु रहे होंगे जिनका हिंसा धर्म मनुष्य के पवित्र शरीर पाने पर भी नहीं छूटा। वेसमभो ने यहाँ तक भी कह डाला है कि हम तभी सुखी और स्वस्थ होते हैं जब किसी बिस्मिल काफिर का सिर फडकता हुआ देखते हैं। कोई कहते कि बहुतेरो के आनन पर मुस्कुराहट तभी आती है जब कि भयंकर शब्द उनके कर्णों में सुन पडते हैं। कोई ऐसे हैं कि वे उस समय बडे प्रसन्न होते जब उनसे कोई ऐसी बात कहते बन पडे कि जिसमें

कोई व्यक्ति नख शिख तक भस्मीभूत हो जांय। कोई ऐसे हैं कि उजरे हरख विषाद बसेरे। ऐसे जन प्रायः दुखी रहा करते, क्योंकि ईर्षा, द्वेष, क्रोध की हृदय दाही अग्नि, उनके हृदय को ग्रस्त किया करती, इससे उनकी आँखें आग फेंकती और देखने से ऐसा मालूम होता कि यदि इनमें जलाने की शक्ति होती तो सहस्त्रों प्राणियों को वे भस्म कर डालतीं, ऐसे तामसी मनुष्यो के दर्शन या उनके दुष्ट कीर्ति के पढने से आत्मा झुलसती और उनसे दूर भागती है। ऐसे पुरुष किसी के मित्र नहीं होते क्योकि मैत्री, करुणा, मुदिता का लेश भी उनमें नहीं रहता इससे वे अपने को जगत में अकेले ही पाते हैं चाहे वे शाहशाह ही क्यों न हों और इतिहास लेखकों के अतिरिक्त कोई कवि उनके गुणो का गान नहीं करता, क्योकि वे उसके योग्य ही नहीं हैं।

राजसी सुख का आदि अमृत सा मीठा और परिणाम विष सा कटु होता है, परन्तु वह ऐसा मीठा है कि सारा लोक इसी सुख को परम सुख मानता और इसी की अनेक वीथिओं में बादशाह, शहशाह, राजा, बाबू वणिक और यावत् ससार के मनुष्य हैं, विचरते रहते हैं। बूढा, ज्ञानी इतिहास कहता है कि राजसी पुरुषों की आँखें तबी खुलती है जब उनका शरीर और धन लुट जाता है। राजसी भोगो के पश्चात् मनुष्य कुछ ऐसा दीन हीन और दरिद्र सा हो जाता है कि उसमें फिर कोई सात्विक या राजसी भावना उठती ही नहीं, जिसको कवियों ने अनेक उपमा और उत्प्रेक्षाओं से समझाया है। कोई कहते कि राजसी सुख आदि में, सजी धजी राजधानी सा देख पडता है कि जिसमें सारे ससार के आनन्द की सामग्री उपस्थित है, जिसकी वीथियाँ मनुष्यों के कलवर से

सजीवित सी हो रही है, और चतुर्दिक उत्साह और मंगल के सामान देख पडते हैं परन्तु कलान्तर में नगर के उजाड और वीरान हो जाने पर जैसे उसके कोटरों में चमगीदड और श्रृगाल बसते हैं, वैसे ही राजसी सुख के उपभोग के अन्त में इस शरीर रूपी नगर की दशा हो जाती है, क्योंकि जब विषय भोग से जीर्ण हो जाता है तो इसमें केवल तृष्णा श्रृगाल और हिरस चमगीदड रह जाते हैं। या राजसी पुरुष उस नादान मुसाफिर सा है जो इस माया की सराय में आ बसा और माया की अनेक प्यारी दूतियो ने उसको ऐसी मोह की मीठी मदिरा पिलाई कि जिसके पीते ही वह मूर्छित हो गया, और वे सजरी में उसका सब धन हरण कर, प्रात काल वे उससे सराय में बसने का किराया माँगती और न मिलने पर उसकी अनेक दुर्गति करती हैं, अर्थात् शरीर के जीर्ण हो जाने पर वा वित्त के नष्ट हो जाने पर मन की तृष्णा अठगुनी हो जाती, क्योंकि पहिले के भोगों के न प्राप्त होने से चाह वा हिरस रूपी विच्छू अहर्निश उसके हृदय पर डक मारा करते हैं।

राजसी सुख की यदि हम एक वेश्या से समता दें तो कोई अनुचित नहीं है क्योंकि जब तक हम सुखी और सम्पन्न रहते वे हम पर कृपा कटाक्ष निक्षेप करतीं और ऐसा जान पडता कि हमारे पहलू से यह कहीं अनत न जायेंगी, किन्तु दरिद्र होने पर वह लाख बुलाने और प्रार्थना करने पर भी एक बार फिर कर नहा देखतीं। ज्ञानी निचकेता जी ने ठीक ही कहा है कि भोग से तो इन्द्रियों का सकल तेज जर्जर और निस्तेज हो जाता है। यूरुप के दार्शनिकों ने भोगियों की शरीर की समता लद्दू या भाड़े के एक्के के टट्टुओं से बहुत ही उचित दी है, क्योंकि वे लाख विषय के चाबुक लगाने पर भी आगे

को नहीं चढ़ते। इन सब की इन्द्रियाँ ऐसी कुछ शिथिल हो जाती हैं, कि न वे यथेष्ट भोजन कर सकते, न हँस बोल सकते न तो वायु को सह सकते, न जल की अनेक क्रीड़ाओं को कर सकते और न कभी उन्हें सेज पर गाढ़ निद्रा अग लिपटा कर सोती है। वे तो विचारे बस मीरफरश बन जाते कि जिनका उठना बैठना भी दूसरों के हाथ रहता है। फिर ऐसे भोग में क्या सुख है ? भाड़े वाले टट्टू के सदृश इन्द्रियों को रखने में इस जगत का क्या सुख प्राप्त हो सकता है ? इसीसे सयमी जन युक्त आहार करते, चाहे लाख नेमतें रक्खी हों और चाहे लोभ वा काम के अखिल सामान क्यों न उनके समक्ष प्रस्तुत कर दिये गये हों ? भ्रम से बादशाह समझता है कि यदि हम इस सारी वसुधा को अपनी विजय पताका के नीचे ला सकते तो निश्चय यह मन सदा के लिये सुखी हो जाता। सिकन्दर सीजर नेपोलियन, महमूद, नादिर, दुर्योधन, रावण इत्यादि ने देखा है कि सहस्रों विषय प्राप्त होने और लोक में सब से ऊँचा गिने जाने पर भी यह मन सुखी वा सन्तुष्ट न हो सका। प्रत्युत वह अत्यन्त दुखी और दीन हो गया, क्योंकि उसी के कारण मनुष्य शरीर के पवित्र रुधिर से कई बार वसुधा छिन्न हो गई। भला ऐसा मनुष्य शान्त सुमन आनन्द पूर्वक कैसे बैठ सकता है ? योंही द्रव्य के सचय करने वाले समझते हैं कि जब हम इतना द्रव्य अपने कोष में सचय कर लेंगे, वह लोभ और तृष्णा की अग्नि जो हृदय में जल रही है निश्चय शान्त हो जायगी। पर देखा गया है कि उससे भी अधिक प्राप्त कर चुकने पर मन दरिद्र का दरिद्र ही रह गया और तृष्णाग्नि और भी तीव्र हो गई है। इसी प्रकार कामी लोग यद्यपि नित्य ही कामिनी सग रूपी सग से सिर टकराते टकराते श्वेत कुन्तल और पोपला

सुख कर लेते तथापि तुष्टि नहीं पाते। जैसे कि ययाति ने समझा था कि इतने भोग के पश्चात् निश्चय मन इससे उपराम ले सुखी होगा पर देखा कि आग से आग नहीं बुझती और मन कभी भी भोग से शान्त नहीं होता है।

सारांश यह है कि जितने प्राणी इस लोक में हैं सभी चाहते हैं कि वे सदा के लिए सुखी हो जायें, आनन्द और उत्साह का महागज अपने द्वार पर बाँध, मौछों पर ताव दिया करें या आनन्द के श्रोत का तालाश कर तृप्तात्मा और मालोमाल हो जाँय, पर जैसा कि वेद भगवान कहते हैं कि सत्य का मुख तो हिरण्य मय पात्र से ढँका हुआ है अर्थात् आनन्द का श्रोत अविद्या मेरु पर्वत की ओट में बह रहा है जिसका तात्पर्य्य यह है कि वह पर्वत सुहावने और ललचावने दृश्यों से पूर्ण है कि मनुष्य उसी की शोभा देखता रह जाता और उस पुनीत आनन्द श्रोत के ढूँढने की कभी जिज्ञासा भी नहीं करता। लोलुप मन या यों कहिये सारा लोक चौबीस घटे माया की हाट में भटक रहा है कि आनन्द का सौदा करें और सुखी हो जायें। इस अवस्था को शास्त्रकारों ने कस्तूरी मृग से दृष्टान्त दे भली भाँति समझाया है। वे कहते हैं कि वह उन्मत्त मृग जिसके शरीर ही में कस्तूरी वसती और उसकी सुगन्ध पाकर वह सारे जगल में खोजता है कि उसे प्राप्त करे। तात्पर्य्य यह है कि जो कुछ आनन्द इस लोक की वस्तुओं से होता है उसका मुख्य कारण यह आत्मा ही है, कि जिसे न जान, मूढ़ मनुष्य मृग सदृश विषय कानन में भटकता घूमता है। योंही दूसरी जगह कहते हैं कि वह सरस सुर जो वसी से निकल रहा है, उसे यदि कोई प्राप्त करना चाहे तो वसी को प्राप्त करे अर्थात् यदि हम किसी वसी के सरस सुर का सुन, जो परोक्ष में बज रही है, उसका

कारण खोजने चलें, तो देखेंगे कि उन सब सरस सुरों का उत्पत्ति क्षेत्र एक छोटी सी वंशी है। उसी प्रकार यावत् सुख इन इन्द्रियों द्वारा होते हैं यदि आप विज्ञानी हैं तो अन्वेषण करने पर उक्त आनन्द का मुख्य कारण अपनी आत्मा ही को पायेंगे। परन्तु यह आत्मा वंशी अव्यक्त दुर्विज्ञेय और सूक्ष्मतर है जिस कारण यद्यपि उसकी ध्वनि प्रतिक्षण निकलती रहती है तथापि मूर्खजन नहीं जान सकते और न यह पहचान या अनुमान कर सकते कि यावत् सुख और आनन्द हैं उसका मुख्य कारण उसकी आत्मा ही है न कि विषय। वंशी के सरस सुर से वेद भगवान का यह तात्पर्य्य है कि जो विषय से वा किसी कारण से, आनन्द की धारा निरन्तर आत्मा में उठ रही है उसका कारण विषय नहीं है, किन्तु वह आत्मा ही है जो कि आनन्द स्वरूप है, जिसे मूर्ख न जान कर विषय की गुलामी करता और उसके संग्रह में चतुर्दिक् दौड़ा करता है, और दिग्दिगन्तर प्रसूत वंशी के सरससुरों को इकट्ठा करने का परम असम्भव कार्य्य किया चाहता है। क्योंकि सारा आनन्द इस शरीर ही में बसता है और इस आत्मा ही में सब सुख अनन्त-सम्पत्ति के सामान भरे हैं, इसी को विद्वानों ने अनेक युक्ति और तर्क से सिद्ध किया है कि यदि आप सुखी तो जगत् सुखी अर्थात् जब कि हम सुखी हैं तो यह जग भी सुख स्वरूप दिखाई देगा और यदि हम दुखी हैं तो जगत भी दुःख स्वरूप ही दीख पड़ेगा। तात्पर्य्य यह है कि जब हमारी आत्मा सुखी है तभी हम अनेक विषयों द्वारा सुखानुभव कर सकते हैं, क्योंकि चित्त की उद्विग्नावस्था में तो देखा है कि लाख आनन्द के दृश्य वरञ्च अखिल लोक की सामग्री भी फीकी लखाई पड़ती है। विषय में यह शक्ति निश्चय

नहीं है कि अस्वस्थ को स्वस्थ कर सकें, या दुखी को सुखी कर सके। जैसे कि ज्वर से सतप्त या चिन्ता से उद्विग्न मनुष्य के समक्ष कोई लाख गाना और नाच दिखलाए या शेक्सपियर या सादी के ललित वाक्य सुनाये, पर उसको वे सुखी न कर सकेंगे। इससे निश्चय हुआ कि आनन्द और उत्साह की दीवानी मार्जें तभी आकाश की छोर तक प्रलम्बायमान हो सकतीं हैं जब कि यह आत्मा सुखी और सन्तुष्ट हो।

अब सुखी कैसे हो यह विचारना चाहिये। इसके उत्तर में बूढा वेदान्त यह कहता है कि जब तक यह मन विषयों की अनेक ललचावनी पोथियों में रमता रहेगा तब तक इसे शाश्वत् शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती है, और जब तक शान्ति न आयेगी तब तक आनन्द कदाचित् सम्भव नहीं है। क्योंकि चञ्चल और उद्विग्न मन कभी शान्ति की सुखमयी शय्या पर नहीं सो सका है।

आनन्द का स्रोत एक ऐसे ऊँचे दुर्गम पर्वत से निकलता है जो साधारण श्रद्धा या परिश्रम वाले मनुष्यों के मान का नहीं कि वहाँ तक वह पहुँच सकें। बहुतेरे तो उसकी ऊँचाई को देख चढने की हिम्मत ही छोड देते और कोई दो चार कदम चले तो कुछ दूर जा, शक्तिहीन हो गिर जाते हैं। इसी से भगवान कृष्ण कहते हैं कि सात्विक सुख पहिले विष सा कटु है। "जानवनियन" भी कहता है कि परमात्मा का धाम जहाँ कि आनन्द और सुख का सदावर्त बँटता है, जहाँ कि अमृत की नदी बहती और सदा वसन्त भोग किया करता हैं, वह स्थान जगल पहाड मरूस्थल और दलदलों से सुरक्षित है, इसी से उस ज्ञानी पादरी के कथानानुसार केवल आर्त, जिज्ञासु, प्रेमी भक्त और ज्ञानी जन ही उस दुर्गम मार्ग को पार कर वहाँ

तक पहुँच सकते हैं। यह ठीक है कि यदि आर्त वहाँ तीव्र मोटरकार पर जाता है तो ज्ञानी और विरक्त जोड़ी पर और भक्त चौकड़ी पर उस देश को पहुँचता है। योंही इतर जनों की सवारी यदि खच्चर और गदहे की कही जाय तो कुछ अनुचित नहीं अर्थात् जैसी जिसकी श्रद्धा है वैसी उसकी सवारी है।

संसार में भी तीन चार ठौर सात्विक सुख का उदाहरण देखने में आता है। प्रथम तो विद्या है जिसके दो चार घण्टे पढ़ने के पश्चात् जो सात्विक हर्ष का उद्गार हृदय में उठता है, यद्यपि वह क्षणिक है तथापि सात्विक सुख का आदर्श है। दूसरा, जब कि आप किसी को दु:ख दारिद्र्य वा डूबने से बचाते हैं या विपत्ति के तूफान में पड़े हुए को लक्ष्मी गृह आदि से सहायता दे उसे शरण देते हैं। ऐसी सहायता के देने पर जो आत्मा को सुख वा सन्तोष होता है वह भी परम सात्विक है। योंही पुण्य जप, तप, यज्ञादि दैवी कर्मों के पश्चात् जो सात्विक आह्लाद आता है, सात्विक आनन्द का परम उदाहरण है। वैसे ही जब हम किसी महात्मा के आश्रम में प्रवेश करते हैं तो देखते हैं, कि वेप्रयास हमारे कन्धों पर से मोह और अहंकार रूपी ज्ञानभक्षी राक्षस क्षणैक के लिये उतर जाते और नास्तिक और भ्रान्त हृदयों के भी हृदय को कुछ काल के लिए सात्विक आनन्द की किरणें उजेली कर देती हैं। वैसे ही आवारिपूर्ण उमड़ी हुई चौड़ी नदियों के देखने, झरने वा दरियों के अनेक सुहावने कलकल शब्द को स्वस्थ मन सुनने, या पर्वतों के अनेक श्यामायमान शृङ्गों की शृङ्खलाओं के देखने या आकाश में अपूर्व इन्द्र धनुष के दर्शन से जो आनन्द आता वह भी सात्विक ही है। योंही दूर से आये मित्रों के सम्मिलन में भी सात्विक आनन्द का

वैभव देखा गया है। देखिये जब परम पराक्रमशाली पवन सुत ने भगवती सीता को अशोक के नीचे उदास मन बैठे पाया और जब उनसे भगवान रामचन्द्र का कुशल सदेश तथा लका में ससैन्य आकर राक्षस कुल के नाश करने तथाच उनको छुडाने की प्रतिज्ञा सुना और जलती हुई कृषि सी जनक नन्दिनी को अपने अमृतमय वाक्यो से सींच कर ऐसे सुखी हुए कि अपने सात्विक उत्साह में आकर सारी लंका को फूक डाला। यही सात्विक हर्ष में एक तामसी कर्म का उदाहरण है।

सात्विक सुख का अन्वेषण करने वाला नित्य उज्वल और पुनीत लोक की ओर आगे बढ़ता है, वही राजसी और तामसी जन नित्य अविद्या तिमिराच्छादित सर्प और विच्छुओं से आकीर्ण लोक में गिरने को काल के वृहत् पाश में नित्य और भी उलझते जाते हैं। यदि सात्विक सुख के देश में सुरत की झनकार उठ रही है और भक्ति भावना के अनोखे नूपुर मधुर निनाद कर रहे ह, तो राजसी और तामसी के हृदयों में कामना, क्रोध, अहकार रूपी भयकरी का भयावह चीत्कार मच रहा है। यदि एक की इन्द्रियाँ सदा सतुष्ट और सुखी रहती तो दूसरे और तीसरे की इन्द्रियाँ गरुड के बच्चों वा राक्षसों की सतानों की भाँति सदा भोजन ही माँगा करतीं, यदि सात्विक के आदर्श स्वरूप श्री महाराज रामचन्द्र, युधिष्ठिर, विक्रमादित्य अकबर इत्यादि हैं कि जिनके चरित्र की कथा मनुष्यों को सदा सच्चरित्र और धार्मिक बनाएँगी, तो सेम्पटस, जान, महमूद, दुर्योधन रावण इत्यादि तामसी मनुष्यों की कथायें सदा लोक को हानिप्रद हुआ करेंगी। यदि एक अपने पीछे इत्र सी सत्कीर्ति रूपी खुशबू छोडती तो दूसरी मोटरकार सी ऐसी दुर्गन्धित कर जाती कि जिसका सस्कार

समय नहीं मिटा सकता। यदि एक उस लोक में विचरता कि जिसकी प्रशंसा में श्रुति कहती है कि उस ऊर्ध्वलोक में न कोई देवता, न सर्वत्र गामी पवन ही जा सकता, जहाँ कि सात्विक जन नित्य बसते और नित्य नये उत्सवों के समान देखते हैं। राजसी जन जन्म और कर्म के जाल से जकड़ा यद्यपि अकुलाता और फड़फड़ाता पर मोहवश उसे छोड़ नहीं सकता, योंही तामसी तो सदा अधोलोक ही में रहता है। यदि एक स्वर्ग का द्वार इसी लोक में खोलता है तो दूसरा उसे सोने और चाँदी से ढक देता है। यदि एक चिरस्थायी तो दूसरा बिजली सा क्षणिक प्रकाश दिखा पीछे निविड़ अंधकार में छोड़ता है। भगवान् श्रीकृष्ण सात्विक सुख की प्रशंसा में कहते हैं कि इस सुख के प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य को किसी वस्तु के प्राप्त करने की इच्छा नहीं रह जाती पर वह सुख जंगलों में घूमने वा तीर्थों के पर्य्यटन में अपने पैरों के तोड़ने से नहीं प्राप्त हो सकता, वह तो केवल अपने घट ही में खोजने से सुलभ है।

इस सुख के अन्वेषण की इसलिये आवश्यकता पड़ी कि जब पंडित कवि और दार्शनिकों ने देखा कि इस लोक में नित्य क्षणिक सुख की बालू की दीवार उठानी पड़ती कि जो नित्य गिरा करती है, यथा नित्य नई माशूकाएँ ढूँढनी और नित्य नये से प्रेम की ग्रन्थि जोड़नी पड़ती है, जिससे नित्य नये झंझट, और विघ्नों के तूफान का सामान करना पड़ता क्योंकि वे यदि आज हँस रही हैं, तो कल कोसने लगतीं, यदि आज आप पर जान निछावर करती हैं तो कल सर्व भाव से विरक्त हो बैठतीं, ऐसी ही प्रकृति की प्राय सब माशूकाएँ हुआ करती हैं, जिनके भाव कभी स्थिर नहीं रहते। पण्डित ज्ञानी और

विचक्षणजन जब माया की हाट में आनन्द और सुख का सौदा करने चले और इतिहास को अपना नेता बनाया और पुराण को साथ लिया तो देखा कि कोई ऐसा सौदा नहीं है कि जो इस आत्मा को सदा के लिये आनन्द मूर्ति बना दे, क्योंकि ये कहते हैं कि देखो भूमि फतह करने वालों ने अन्त को सिर पीटा और कहा कि जो करना चाहता था वह न किया। मूषको सा द्रव्य संग्रह करने वाला देखता है कि नित्य वह लक्ष्मीवान होने के बदले असंतोष के कारण दरिद्र होता जाता है और भोगी कुछ दिन के पश्चात् जिस भोग के लिये प्राण देता था अब उसे देखना भी नहीं चाहता। योंही यावत् राजसी सुख हैं उनको यदि तत्वत. विचारिये तो यही समझ पडता है कि इनकी मैत्री कभी स्थिर नहीं हो सकती, क्योंकि माया चल प्रकृति वाली है, इसी से उससे जनित यावत् सुखादि हैं वे भी चल हैं। राजसी सुख में सब से बडा कष्ट तो यह है कि विधि कभी पूर्ण रूप से उसका अनुभव नहीं करने देती, क्योंकि जब मनुष्य समझता है कि अब हमें पूरा आनन्द आ चला या अब हम पूर्ण रूप से आनन्द पूर्वक इस सचित धन वा राज्य का उपभोग करेंगे, तभी प्राय देखा गया है कि उसी समय अनेक विघ्न स्वरूप तूफानों के आने का अवसर मिलता है। अत उन महात्माओं ने स्थिर किया कि इस माया की हाट में कोई ऐसा सौदा नहीं है जो स्थायी हो और निरन्तर सुख का देने वाला हो, क्योंकि आनन्द के चाह की आग जो अन्त करण में लगी हुई है, वह माया के बाहरी विषयों से कैसे बुझ सकती है। अर्थात् आत्मा को अनात्मीय वस्तुओं से कैसे तुष्टि हो सकती है इसी बेसमझी को ज्ञानियों ने भ्रान्ति कहा है, अर्थात् सुख किस ठौर बसता है और जगत उसे किस ठौर ढूढता है

इसी से कभी कभी माया के गुलामों को उन्होंने अन्धा और वेसमझ कहा है। यह ठीक है कि माया की हाट में सैकड़ों दल्लाल घूमते रहते हैं जो हाथ पकड़ और घसीट कर ले जाते और सौदा पक्का कराके ही छोड़ते, पर उसी के विरुद्ध सात्विक, की शान्त हाट में केवल आपकी प्रवल श्रद्धा और जिज्ञासा मात्र सहायिका मिलतीं और माया के महा पराक्रमी सैनिक चौवीस घंटे लूटने और सौदा विगाड़ने के लिये तैयार रहते हैं, सुतराम् यही सब दुःख और कठिनाइयाँ इस हाट में झेलनी पड़ती हैं।

हमने देखा, बड़े से बड़े आनन्द और मंगल के अवसरों में जब कि अपने ही घर में बड़ी सी बड़ी महफ़िलें थीं, और वेश्याओं के रूप लावण्य मिस भगवान् कुसुमाकर मानो वसन्त का प्रत्यक्ष समा ला रहे थे, संगीत सम्मिलित सारंगी के सरस सुर से दीवानख़ाना दीवाना बना वाह वाह कर रहा था, जड़ होता हुआ भी सुरीला हो रहा था, वा सत्संगति क्या २ नहीं कर डालती इसका प्रत्यक्ष उदाहरण बन रहा था, अथवा और २ कई महोत्सवों पर जो इस जीवनी में देखने का अवसर मिला, तब जब जब मैंने विज्ञान शास्त्रों से कहा कि वे दिल के घंटे को बजाएँ और पूछें कि अब तो आप संतुष्ट हुए, तो देखा कि मन किसी न किसी कोने से असंतुष्टता या न्यूनता ही का उत्तर देता है।

परन्तु यदि आप सद्गुण निष्ठुर वैद्य की कटु पुड़िया किसी भाँति निगल जाइये, या इस माया के विकट और अपार जंगल को विद्या भक्ति और तितिक्षादि नेताओं की सहायता से पार कर ले जाइये तो निश्चय चिल्ला कर कहियेगा कि जिसे हम पाना चाहते थे, उसे हम पा चुके। हमें इस लोक में कुछ कमी नहीं रह गई, सन्तोष ने ख़ज़ाना पूरा कर दिया, अब मन

सदा आनन्द के ऊँचे सिंहासन पर स्थित रहता है और आनन्द की ऊँची मौजों को देख देख सदा प्रसन्न होता और बादशाह सा सारे लोक को अपनी प्रजा सरीखा देखता है क्योंकि तपोधनी सचमुच ही धनी हैं और इतरजन उनके समक्ष वस्तुतः रंक और दरिद्र हैं।

सच तो यह है कि जब अन्तर राज्य का राजविद्रोह शमन हो जाय अर्थात् दुष्ट काम क्रोधादिक रजोगुण के महा सैनिक और उनके पदातिगण नष्ट हो जायें और जागता विवेक मन्त्री अपने नियत कर्म्म से स्थित हो जाय, तथा सतोप निग्रह पहरुये पहरा देने लगें तभी तो यह देही अपने स्वरूप में स्थित हो शाश्वत आनन्द का भागी हो सकता है, वा ऐसा कहें कि जैसे तन्त्री से सरस सुर तभी उपज सकते हैं जब कि उसके सब तार परस्पर मिले हों वैसे ही इस शरीर रूपी तन्त्री की भी अवस्था है कि जब सुर में है, अर्थात् मन शान्त है, तो अनेक कठिन से कठिन और गूढ विषयों का भी विचार कर सकता है, किन्तु जब बेसुरा है अर्थात् काम क्रोध लोभ-इत्यादि जब मन को अपने वश कर लेते हैं तो यही बिगडी तन्त्री के समान अपने सरस सुर को भूल जाता है। भगवान् कहते हैं कि अशान्त को कहाँ सुख है अर्थात् कहीं नहीं। यह ठीक ही है, क्योंकि जब ईर्षा, द्वेष, लोभ, मोह, मान इत्यादि गरुड के बच्चों के सदृश हमारे अन्तःकरण पर चञ्चु का आघात कर रहे हैं, तब कैसे किसी को सुख मिल सकता है। बलिहारी इस बुढिया मोहनी माया की जो इस बुढापे में भी हजारों माशूकों की माशूका और जिसकी बुढ़ाई जवानी को भी मात किए हुये है, जो ऐसी ललचावनी और सुहावनी है कि प्राणी मात्र जीवन पर्य्यन्त इसी के वश रहते और स्वप्न में भी कभी नहीं समझते और

न उन्हें यह समझने का अवसर ही देती–कि इस अद्भुत सहस्रों तार वाली वीणा का बजाने वाला कौन है ? वा ऐहिक सुख के परे कोई और भी सुख है ? वा इस सारे विश्व का कोई रचयिता भी है ? या इस परम दुर्लभ मानुषी तन को माया की गुलामी के अतिरिक्त और भी कोई काम है ? वा इस अखिल विश्व के रचयिता की भी परिचर्या कर्तव्य है वा नहीं ?

जो ब्रह्म निष्ठ नहीं है, वा आत्मज्ञानी नहीं है, जिसने कि अपने रूप को नहीं पहिचाना और जो मोह निद्रा से निद्रित कहे जाते हैं अर्थात् माया मद से विघूर्णित स्वदेश वा स्वकेन्द्र त्यागी सदा बाहरी विषयों में रमते हुए, अपने घट से बेखबर रहते, उन्हें माया की इस अविद्या गाढ़ निद्रासे उन्निद्रित करने के लिये, सब देशों के दैवी वाक्यों ने प्रयत्न किया कि वे जगें और इस अविद्या निद्रा दु ख को त्याग विद्या व ज्ञान वा सूर्य्य वाले देश में रमे, पर देवी माया की दया से ऐसे सुखमय मंगलकारी प्रिय वचनो को वे सुनने के भी रवादार नहीं। कारण यह है कि सात्विक आश्रमों में जाने से माया और उसके अनेक पदाति रोकते हैं कि वह इस ठौर न जायें और यदि जायँ भी तो कर्ण और चक्षु से शून्य होकर अर्थात् कोई बात न तो याद रक्खे, न समझें वा आचरण करें जो कि वहाँ के आचार्य्य उन्हें उपदेश करते हैं। सारे लोक में कुछ ऐसा ही माया का प्रभाव देखने में आता है।

एक महात्मा कभी कभी अपनी मौज में संसारिक मनुष्यों की माया की गुलामी और मोह की समता लखनऊ के उन धृष्ट नायकों से दिया करते थे जो किसी रूपवती क्रूर स्वभाव वाली यवनी के प्रेम में पूर्ण रूप से ऐसे आशक्त होते कि सैकड़ों घेतले खाने पर भी अपने चेहरे पर शिकन नहीं लाते, सौ सौ कोड़े

खाने पर उफ नहीं करते, लाख झिडकियाँ सुनने और गर्द-नियाँ देकर निकाले भी जाते तो भी उस प्रिय वीथी की धूलि उडाना नहीं छोडते। ऐसे विचित्र प्रेमी जगत या पुस्तकों में दो ही चार ढूंढने से मिलेंगे पर हमारे इस बुढ़िया माया के तो सबी ऐसे ही धृष्ट प्रेमी हुआ करते हैं, जो जगत की लाख लाख लातें खाते पर तो भी बेशर्मी से मुँह नहीं मोडते। यद्यपि यम-राज दिन रात मृत्यु के गोले बरसा रहा है, सहस्रों नित्य प्रस्थान कर रहे हैं, पर जो बचते अपने को अजर अमर समझते, और कभी नहीं विचारते कि ससार छोड उन्हें कहाँ और ठौर भी जाना है? उनके अनेक कर्मों का कभी कोई पूछने वाला भी होगा? इस देह के अधिष्ठाता देही प्रभु की परिचर्य्या भी करने के योग्य है, वा यह जीवन जानने समझने या पूजने के योग्य है? ऐसा कुछ अविद्या मोह का परदा पडा है कि जिससे इसके भीतर बैठे हुए अव्यक्त, सर्व प्राणियो के अन्तर्देश में रमने वाले पुरुष का पता भी नहीं चलता, केवल इस शरीर रथ के सारथी मन और इन्द्रिय अश्व आदि का ज्ञान रहता है। कारण यह है कि अनेक जन्मों से इस माया की गुलामी करने से इस मन का ऐसा कुछ भ्रष्ट सस्कार हो गया है कि वह इसी माया की गुलामी में अपने को कृत कृत्य मानता, कभी नहीं अकुलाता।

किसी कवि ने ठीक कहा है कि ज्यो ज्यो हम ऊपर चढ़े, त्यों त्यों बस्ती नज़र पडी अर्थात् ज्यों ज्यो ऊँचे सात्त्विक ऊर्ध्व लोक को चढ़ते जाते हैं त्यों त्यों इस ससार का सच्चा स्वरूप देखने में आता है। जैसे कि जब हम किसी ऊँचे पर्वत के शृङ्ग पर चढ़ जाते हैं तो नीचे के रहने वाले मनुष्य आदि अति क्षुद्र दिखाई देते हैं। वहाँ बैठे हम अनेक सुहावने दृश्य को देख सराह सकते हैं पर वे बिचारे जो पृथ्वी पर हैं, चार हाथ

भी नहीं देख सकते। पानी बरसने से संसार में कीच पैदा होती है पर हमारे पैरों में छू भी नहीं जाती। शहर की दुर्गन्धि धूम्र तथा धूलि से दूषित पवन के स्थान पर वहाँ सहस्रों वनस्पतियों के पराग से पूरित प्राणप्रद मन्द मन्द वायु हमें पीने को मिलती है। पक्के और गाड़ियों की खड़खड़ाहट के स्थान पर झरने और प्रपातों के मधुर घोष से सदा कर्ण पूरित रहता है। ऐसा भेद जीवन और सुख में हो जाता है जब कि हम स्थूल पर्वत पर चढ़ते हैं, फिर आप समझ सकते हैं कि जब हम उस उच्च सात्विक निर्मल देश की ओर उन्मुख हो कुछ ऊपर जा उस प्रशान्त पर्वत पर चढ जायँगे तो देख सकेंगे कि हम कैसे सुखी हैं और ये अध प्रदेशवासी राजसी और तामसीजन कैसे चिन्ता और दुःख में मग्न हैं। तब भला उन सबों की क्या कथा कि जो अपनी सारी भावनाओं के बाजार को ऊर्ध्व लोक में जा बसाते हैं और देखते हैं कि यही पृथ्वी दूसरी की दूसरी हो जाती है। यावत् जगत के कार्य्य ह सुखमय और यावत् प्राणी हैं सब मित्र हो गये हैं। भक्ति और ज्ञान का अपूर्व समीर उनके हृदय के सारे ताप संस्कार को हर लेता और नित्य संयम और नियम के अपूर्व निर्झरों के जल पान से वे शाश्वत सुख के भागी हो गये हैं।

उक्त उत्प्रेक्षा को दूसरे महात्मा इस प्रकार से कहते थे कि आनन्द और सुख तभी आ सकता है-जब हम बप्वजा स्वयम नाचने के, नाच देखने पैठते हैं यानी जब इस सारे संसार को नेपथ्य मान लीजिये, और मनुष्यों को नट समझिये एवम् अपने को उस अभिनय का द्रष्टा बनाइये तभी आप इस विश्व महा नेपथ्य के विविध नाट्य और प्रतिक्षण बदलते हुए प्रकृति के परदे को सम्यक रूप से देख आनन्द का अनुभव कर सकते

हैं। एक दूसरे महात्मा कहते कि जगत बारात है उसमें यदि आप बराती सदृश हूजिये तो महफिल और अनेक उत्सवों को देखते हुए भी उससे विरक्त और हानि लाभ से रहित रह, घर लौटने पर सुखी रहेंगे। हमने इस जगत के सुखों को थोड़े या बृहत् रूप में अनुभव किया है, पर अब जो इससे अलग जा, अपने एक छोटे से ग्राम में बैठे, अधिपति या देही की सुध ली तो देखते हैं कि कैसा यह अन्तःकरण सुखी हो गया है। जो अहर्निश विषय वीथिओं में विचरता और अनेक दुखों का भागी हुआ करता था, अब स्वस्थ है। चैतन्य, निर्मल, देदीप्यमान, सारे विश्व को तेज देने वाला साहेब संतुष्ट है और मारे आनन्द के उछला करता है। उन्हीं साहेब के दर्शन का सुख सारे विश्व के सुखों को गर्हित ठहराता है। इसी चिरस्थायी, सदा नूतन, अविचल आनन्द को प्राप्त करने के लिये ज्ञानीजन अनेक प्रयत्न करते हैं। क्योंकि इस लोक के क्षणिक आनन्द उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकते।

यह सात्विक देश कुछ ऐसा क्लिष्ट, दुर्गम, दुर्विजय है कि उसकी ओर कोई जाना नहीं चाहता। इस निर्मल देश की कथा और आनन्द की बातें यदि कहीं सांसारिक मनुष्य या विद्वान् पादरी सुनता तो कपट हास्य से कह चलता कि क्या परी सी प्रियतमा पत्नी के पार्श्व शयन से ब्रह्मचर्य्य में अधिक सुख सम्भव है? क्या सुस्वादु भोजन करने से भूखो मरने में अधिक आनन्द है? समाज को छोड़ एकान्त में क्या अधिक मन रम सकता अथवा उन्नति को प्राप्त कर सकता है? क्या मुद्रा गिनने से माला की मनियाँ गिनने में अधिक प्राप्ति है? क्या शस्त्रों से सुसज्जित मनुष्य से दिगम्बर कभी भला लग सकता है? ऐसी ही प्राय विविध असम्भव और विपरीत

भावनायें सात्विक आनन्द के विषय में हुआ करतीं, और सब के हृदय को ऐसी कँपा देती हैं कि वे इस देश की इच्छा और कामना भूल से भी नहीं करते।

इन सब प्रश्नों को यद्यपि वेदान्त और सांख्य ने भलीभाँति सिद्ध कर दिया है कि यह आत्मा विषयों के संग्रह बिना भी परम सुखी और ऐसा सन्तुष्ट रह सकती है जो विषयों द्वारा कदापि सम्भव नहीं, पर उनकी बातों के सुनने वा समझने को यह मन कभी नहीं चाहता। यद्यपि इन शास्त्रों ने उस सात्विक देश की प्रशंसा कर चाहा कि भूले हुए विषय जंगल में भरमने से ध्वस्त और क्लान्त लोग इस आत्मा रूपी महातरु की छाया का आश्रय ले स्वस्थ हों। अपने भूले हुए घर यानी अपने चैतन्य रूप में स्थित हो शाश्वत सुख के भोक्ता हों। पर इस माया के प्रत्यक्ष लुभादने दृश्य से मोहित सामान्यजन उनसे लाख समझाये और जगाये जाने पर भी कुछ ज्ञान लाभ नहीं कर सके।

भगवान नारद ने जब देखा कि सकल शास्त्रों के अध्ययन कर जाने पर भी इस दरिद्र मन का दारिद्र्य नहीं गया और न अपने स्वरूप को सम्यक् रूप से जान सके तब परम पूज्य भगवान सनक सनन्दन के समीप गए और कहा कि हे भगवन् यह विद्या नहीं जानता जिससे कि मन का सम्पूर्ण दुःख मिट जाय, जिसके उत्तर में उन महात्मा ने उन्हें ब्रह्म विद्या का उपदेश किया। दुःख का मिटना ही आनन्द का उदय होना है दुःख भीतर है न कि बाहर, अर्थात् यावत् दुःख और दारिद्र्य है वह मन ही में निवास करते हैं, जिसको कि ज्ञानियों ने देखा कि ये विषयों की प्राप्ति से नहीं जा सकते हैं। बिना दुःख के नाश हुए सुख कहाँ? इससे ज्ञानियों ने ब्रह्म विद्या की आवश्यकता देखी, क्योंकि यही एक विद्या है जिसको प्राप्त कर

यह मन सदा के लिए यावत् दुःखों से निर्मुक्त हो शाश्वत आनन्द का भोक्ता हो सकता है।

ज्ञानीजन उस सुख को सुख नहीं कहेंगे कि जिसका परिणाम दुखदाई हो। विषयों के सुख के पश्चात् तथाच अनेक ऐहिक सपत्तियों के सग्रह के अनन्तर मनुष्य, शरीर और मन से दुखी और चिन्तित हो जाता है और कभी कभी तो यह अवस्था अनेक जन्म तक उसका साथ नहीं छोडती, अत ज्ञानीजन कहते हैं कि थोडा सुख और बदले में उसके अधिक दुःख का सग्रह करना उचित नहीं है। हम ऐसा सुख नहीं भोगना चाहते जिसके बदले में हमें मानसिक शारीरिक या अनेक जन्म रूपी बन्धन के दुःख भोगने पडें।

इसी से ज्ञानीजन जब इस ससार के सुख और उसके परिणाम को विचारते हैं तो उसकी अवस्था उस दार्शनिक सी हो जाती है जिसने जब देखा कि उसके समक्ष भोजन के अखिल सामान चुन दिये गए और सब के मुंह में पानी आने लगा कि-कब इस सुस्वादु भोजन को हमारी रसना देवी आस्वादन कर कृतार्थ होंगी, रोने लगा और लोगों से पूछे जाने पर-उत्तर दिया, कि जब इन अमीरी गरिष्ठ विदाही खाद्यों को आप लोग यथेष्ट भोजन कीजियेगा तो आप लोग सुखी होने के बदले दुखी हो जाइयेगा, इन खानो में अनेक रोग छिपे हुए हैं जो आपको दौड कर पकड लेंगे, क्योंकि यदि एक खाने में गठिया तो दूसरे में वायु शूल उपजाने वाला अश है, यदि यह विशूचिका उपजाने वाला अश है, तो दूसरी वस्तु खासी और जुकाम को जारी करने वाली है, अर्थात् अमीरी खाने से रूखा सूखा खाना सदा निरोग और सुखी रखने वाला होता है। वैसे ही स्पर्शज सुख अर्थात् इन्द्रिय जनित सुख परम ललचायने

भावनायें सात्विक आनन्द के विषय में हुआ करतीं, और सब के हृदय को ऐसी कँपा देती हैं कि वे इस देश की इच्छा और कामना भूल से भी नहीं करते।

इन सब प्रश्नों को यद्यपि वेदान्त और सांख्य ने भलीभाँति सिद्ध कर दिया है कि यह आत्मा विषयों के संग्रह विना भी परम सुखी और ऐसा सन्तुष्ट रह सकती है जो विषयों द्वारा कदापि सम्भव नहीं, पर उनकी बातों के सुनने वा समझने को यह मन कभी नहीं चाहता। यद्यपि इन शास्त्रों ने उस सात्विक देश की प्रशंसा कर चाहा कि भूले हुए विषय जंगल में भरमने से ध्वस्त और क्लान्त लोग इस आत्मा रूपी महातरु की छाया का आश्रय ले स्वस्थ हों। अपने भूले हुए घर यानी अपने चैतन्य रूप में स्थित हो शाश्वत सुख के भोक्ता हों। पर इस माया के प्रत्यक्ष लुभावने दृश्य से मोहित सामान्यजन उनसे लाख समझाये और जगाये जाने पर भी कुछ ज्ञान लाभ नहीं कर सके।

भगवान नारद ने जब देखा कि सकल शास्त्रों के अध्ययन कर जाने पर भी इस दरिद्र मन का दारिद्र्य नहीं गया और न अपने सरूप को सम्यक् रूप से जान सके तब परम पूज्य भगवान सनक सनन्दन के समीप गए और कहा कि हे भगवन् मैं वह विद्या नहीं जानता जिससे कि मन का सम्पूर्ण दुःख मिट जाय, जिसके उत्तर में उन महात्मा ने उन्हें ब्रह्म विद्या का उपदेश किया। दुःख का मिटना ही आनन्द का उदय होना है दुःख भीतर है न कि बाहर, अर्थात् यावत् दुःख और दारिद्र्य है वह मन ही में निवास करते हैं, जिसको कि ज्ञानियों ने देखा कि ये विषयों की प्राप्ति से नहीं जा सकते हैं। विना दुःख के नाश हुए सुख कहाँ? इससे ज्ञानियों ने ब्रह्म विद्या की आवश्यकता देखी, क्योंकि यही एक विद्या है जिसको प्राप्त कर

यह मन सदा के लिए यावत् दुःखों से निर्मुक्त हो शाश्वत आनन्द का भोक्ता हो सकता है।

ज्ञानीजन उस सुख को सुख नहीं कहेंगे कि जिसका परिणाम दुखदाई हो। विषयों के सुख के पश्चात् तथाच अनेक ऐहिक सपत्तियों के सग्रह के अनन्तर मनुष्य, शरीर और मन से दुखी और चिन्तित हो जाता है और कभी कभी तो यह अवस्था अनेक जन्म तक उसका साथ नहीं छोडती, अतः ज्ञानीजन कहते हैं कि थोडा सुख और बदले में उसके अधिक दुःख का सग्रह करना उचित नहीं है। हम ऐसा सुख नहीं भोगना चाहते जिसके बदले में हमें मानसिक शारीरिक या अनेक जन्म रूपी बन्धन के दुःख भोगने पडें।

इसी से ज्ञानीजन जब इस ससार के सुख और उसके परिणाम को विचारते हैं तो उसकी अवस्था उस दार्शनिक सी हो जाती है जिसने जब देखा कि उसके समक्ष भोजन के अखिल सामान चुन दिये गए और सब के मुंह में पानी आने लगा कि कब इस सुस्वादु भोजन को हमारी रसना देवी आस्वादन कर कृतार्थ होगी, रोने लगा और लोगों से पूछे जाने पर उत्तर दिया कि जब इन अमीरी गरिष्ट विदाही खाद्यों को आप लोग यथेष्ट भोजन कीजियेगा तो आप लोग सुखी होने के बदले दुखी हो जाइयेगा, इन खानों में अनेक रोग छिपे हुए हैं जो आपको दौड कर पकड लेंगे, क्योंकि यदि एक खाने में गठिया तो दूसरे में वायु शूल उपजाने वाला अश है, यदि यह विशूचिका उपजाने वाला अश है, तो दूसरी वस्तु खासी और जुकाम को जारी करने वाली है, अर्थात् अमीरी खाने से रूखा सूखा खाना सदा निरोग और सुखी रखने वाला होता है। वैसे ही स्पर्शज सुख अर्थात् इन्द्रिय जनित सुख परम ललचावने

रूप धारण करते, जिसके पा जाने पर हम सब कदाचित् परम सुखी होने से अनुमित होते, परन्तु विवेक बुद्धि से देखने पर उक्त दार्शनिक की सी अवस्था हो जायगी जिसने तत्वत: ज्ञान होने के कारण सब का परित्याग कर दिया। इसी से ज्ञानीजन केवल उन सुखों का अनुभव करते हैं जो शास्त्र विहित दोनों लोक में आनन्ददायक होते हैं, आदि में चाहे वे कुछ कड़ुए और कष्टदायी क्यों न प्रतीत हों।

सारांश यह कि अविद्या और मोह से विक्षिप्त मनुष्य को तृष्णा ईर्षा क्रोधादि की चटुल ज्वाला में जलने से कदापि शाश्वत आनन्द लाभ नहीं सम्भव है। विषय तृष्णा में पडे पडे मूढ मृग सदृश पिपासाकुलित इतस्ततः भ्रमण से कभी संतोष नहीं आ सकता। क्या विषय माया वा संसार किसी को पूर्ण आनन्द के सिंहासन पर सदा के लिए बैठा सका है? क्या जड के संग्रह करने से चेतन को कुछ लाभ हो सकता है? क्या मोह के इस निविड अन्धकार में पड़े रहने से सत्य वस्तु का ज्ञात हो सकता है? कभी नहीं। इससे यदि आप सदा के लिये सुखी और आनन्द के प्रासाद पर स्थित हुआ चाहें तो उस परमात्मा जगदाधार ईश्वर के शरण जाइये। तभी आप उनके दर्शन महोत्सव को प्रति दिन अनुभवकर कृत कृत्य हो इस माया के अपार अन्धकार को सहज में पार कर आनन्दमय उज्वल देश में निवास कर सकेंगे अन्यथा कदापि नहीं। भगवद्वाक्य है—

तत्प्रसादात्परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।

श्री शीतलगज की द्वितीय जन्माष्टमी

सन्तों के परित्राता, दीनों के दाता, अहङ्कारियों के शास्ता, प्रमादियों को सद्य- महा मायाजल में डुबो प्राण लेने वाले, भक्तों के पास प्रत्यक्ष षोडषकलावाले ब्रह्म के साकार रूप, कुब्जा से सम्बन्ध कर गोपिका वृन्द के मन में द्वेष दावानल भड़का,- वर्षा की सुरीली धारा से शान्त कर पुनरपि प्रेम बीज आरोपण करनेवाले, राधिका चन्दन तरु का प्यारा कृष्ण नाग, उपनिषद् कामधेनुओं का एकमेव दोग्धा और उसके दुग्ध को अपने भक्तवत्सों को पिलानेवाले, प्रेम और भक्ति से अर्पण किये जाने पर पाण्डेय जी के परिपक्व अन्न को स्वयम् ,साक्षात् रूप से भोजन कर यशोदा जी और पाण्डेय को विस्मित करने वाले अव्यक्त और अकर्मा होते हुए भी व्यक्त हो अनेक लीलाओं के करने वाले, प्रेमी होते हुये भी बड़े बड़े राजाओं को रुलाने वाले, वनमाली होते हुये भी वन देवता नहीं, क्रूर अक्रूर के साथ रहते हुये भी अक्रूर, चीर हरण करते हुये भी दु शासन नहीं, गिरिधर होते हुये भी शेष नहीं,- नाग को नचाते हुए भी सँपेरा नहीं, बलवीर होते हुए भी प्रमादी नहीं, गोपाल होते हुए भी शिशुपाल, अतुला पूतना के स्तन के दुग्ध को पीते हुये

भी परम पावन, आमीर नन्द नन्दन कहाते हुये भी क्षत्रिय कुमार, तेजस्वी होते हुए भी प्रिय दर्शन, चक्रधर होते हुए भी शिशुपाल हन्ता, घनश्याम होते हुए भी श्यामघन नहीं, कामोद्वेग कराने वाली सरस सुरीली वंसी की तानों को सुना शान्तता के स्वरूप, योगिराज, त्रिपुरारि भगवान शंकर की समाधि को छुडाने वाले, भगवान् नारद की मधुर वीणा को मौन करने वाले और सुरलोक के सुरों को अपने महा विरह के सन्ताप में छोड गोपिकाओं के हृदय को प्रफुल्ल करनेवाले, प्यारी राधा केतकी का प्यारा सुरीला मधुकर, पराक्रम में शिव से, ज्ञान में सनक-सनन्दन से, धैर्य्य में शेर से, दया में वरुण से, आनन्द जिनकी आत्मा में न कि विषय में, दरिद्रता दरिद्रता ही की, लाञ्छन भृगु लात में न कि चरित्र में, मोह प्रेम से न कि अयुक्त कर्म्म से, भय चित्र में न कि चरित्र में, यदि व्रज के लिये कलानिधि सा शीतल, तो कंस के अर्थ धूम्र केतु सा कराल, यदि वरसाने का सहृदय दूलहा तो नन्दगांव का नटखट अहीर, यदि यशोदा के अर्थ प्रिय बालक तो राक्षस दल के लिये दावानल उपजाने वाला स्फुलिङ्ग, यदि गोपिका हृदय सरोवर का कलहंस, तो भगवती राधिका के एक ही प्रिय अनुचर, कालीदह में कूदनेवाले, गोपिकाओं से प्रेम रार मचा व्रज को सनाथ करने वाले, हम सब के जीवन दाता और प्रत्यक्ष प्राण, प्यारे श्रीकृष्ण-चन्द्र ने हम सबों के यहाँ पन्द्रह दिन के लिये अतिथि रूप से आकर इस परिवार और सारे घर को कृत कृत्य और सजीव कर, पुनरपि द्वापरयुग के सुखों का अनुभव कराया।

अबकी बार यद्यपि घनश्याम आये पर काले घन न आये। यद्यपि मुरलीधर ने वंसी टेरी पर मेघों ने आकाश में स्निग्ध गम्भीर गर्जन के मिस अपने यहाँ मृदङ्ग नहीं बजाया। यद्यपि

दामिनी सी दमकती भगवती राधिका पधारीं परन्तु दुष्टा दामिनी आकाश से उनके पैरों को चूमने न आई। ठाकुरजी से यह उलहना इसलिये दिया गया कि यदि इन सब देवताओं की बेरहमी या प्रजा की नादानी या चाहे जो कुछ हो -जिससे कि अवर्षण रहा और नादान मेघ कलियुग के कहने में फँस ठाकुरजी की सेवा में नहीं उपस्थित हुये, इसका उलहना यदि इन से न दिया जाय तो किस से, बड़ों की शिकायत यदि बड़ों से न की जाय तो किस से। पर शास्त्र कहता है कि घर आये अतिथि से यो अनेक उलहने और झगड़े की बातें कहनी आतिथेय के विरुद्ध है। किन्तु अपने अतिथि भी ऐसे हैं कि जिनसे कहना और न कहना दोनों तुल्य है, क्योंकि वे दोनों ही जानते हैं।

आज जन्माष्टमी है। बारह बज गये हैं। लम्बे लम्बे काले बादलों से आकाश आच्छादित है। अँधेरी राक्षसी ने सारे जगत को अपने उदर में रख लिया है और मारे ईर्ष्या के एक पत्ती भी दिखलाना नहीं चाहती। वायु यद्यपि देवता है, पर इस समय वह भीमनादकारी राक्षससा लखाई पड़ता है। ऐसे समय हम भक्ति भावना के तीव्र चञ्चल तुरङ्ग पर आरूढ हो कंस के द्वार पर खड़े हैं। ज्योंही देदीप्यमान अद्भुत अपूर्व बालक ने यसुमती के अखिल पुण्य, कंस के दुर्भाग्य और देवताओं के परम सौभाग्य से, इस मर्त्यलोक को स्वर्ग किया, मैंने देखा कि जितने पहरुये थे वे ऐसी गाढ निद्रा में निद्रित से हो गये, मानो वे निद्रा का स्वप्न देख रहे हैं। जो जहाँ था जड़ सा खड़ा रह गया, पर काष्ठ और लौह के बृहत् कपाट ऐसे चैतन्य हो गये कि अपने अन्तर कपाट को खोल दिया। मेघ ने अपनी महती घोषणा से मानो इस महा पुरुष के आने की सलामी

लगो। विद्युलता मारे आनंद के मीराबाई सी नभ में नाचने लगी। बूँदियों के मिस देवता लोग पुष्प वर्षा करने लगे। प्रकाण्ड बुड्ढे शरीर वाले दिग्पाल और महर्षिगण मंगल पाठ करने लगे और यह अशान्त मर्त्य लोक क्षण के लिये शान्त हो गया। वसुमती तो तृणों के मिस मारे आनन्द के रोमाञ्चित हो गई। अशान्त झंझट मचाने वाला, बकवादी वायु भी शान्त हो गया। ऐसे मंगल में विस्मित वसुदेव ने देखा कि उनके हाथ की हथकड़ी और पैरों की बेड़ियाँ उन्हें छोड़, सज्जन सो, जा अलग पृथ्वी पर पड़ी हैं जिससे उन्हें यह निश्चय प्रतीत हुआ कि मार्ग में हमको इस बालक को नन्द के घर पहुँचाने में कोई आपत्ति न पड़ेगी। यह समझ, दुखी देवकी से लड़के को ले वे नन्द गाँव की ओर चले। यद्यपि रात अँधेरी थी पर वसुदेव ने देखा कि जिस ओर वे जाते हैं उस बालक की कृपा से अंधेरी भी उँजेली हुई जाती है। उधर लोमड़ी आगे आगे मार्ग दिखाती जाती है और अनुकूल पवन शीघ्र गमन की प्रेरणा करता। चेतकारी पेड़ों पर बैठ बैठे उन्हें मंगल गीत सुनाती और टिटिहिरी मारे प्रसन्नता के खिलाखिलाती पर लजीली औरतों सा कुछ कह न सकती।

इस भाँति जब वे उत्तुङ्ग तरङ्गों से लहराती कालिंदी के तट पर पहुँचे तो प्राकृतिक मनुष्यों का सा उनका सब साहस छूट गया। जब उन्होंने अपनी आत्मा से सम्मति ली तो वह कहने लगी कि अरे नादान! तू नहीं जानता कि सारे लोक के ठाकुर को तू अपनी गोद में लिये है, इन्हीं से तो समुद्र नदी नद निकलते हैं। तुझे क्या चिन्ता है। फिर क्या था, वह निश्चिन्त यमुना जी में घुस पड़े पर तोभी जैसी मनुष्य की बुद्धि होती है, वे मानक थो, जिसके चरण कमल को चूमने के हेतु

यमुना जी बडी चाह से मोजें मारतीं, हर हर करती हुई बढती जातीं थीं ज्यों ज्यों उठात गये त्यों त्यों वह बढ़ती ही गईं और, उस कृपानिधान ने अपने चरणों को उनके आर्द्र ओष्ठों को पवित्र करने के लिये बढ़ाया, जिन्हें चूम कर वह अपने को कृतार्थ और निहालमान, ऐसी हट गईं कि क्षण भर में क्षुद्र नदी सी पार करने योग्य हो गईं। चकित वसुदेव इस लीला को देख, जान गये कि यमुना क्यों बढती थीं और मेमने से उछलते वे उस पार पहुँच ही तो गये।

वहाँ देखा कि नन्द गाँव ऐसा सो रहा है कि कुत्ते भी भूँकना छोड दिये हैं और धरती उस नायिका सी हो रही थी कि जो सरे शाम से शराब पीते पीते शिथिलगात हो पर्य्यङ्क पर बेहोश पडी हो या जैसे किसी जादूगर ने जादू की छडी अपनी महिमा दिखाने के लिये इस गाँव पर फेरी हो और उसके सारे जीव जड से हो गये हों। ऐसे प्रशान्त समय में वसुदेव, बाबा नन्द के घर पहुँचे। वहाँ भी देखा कि नन्द के घर के कपाट खुले हुए थे, मनुष्य नेधडक सो रहे थे, कोई रोकने वाला नहीं, शीघ्र ही अपनी सकल सम्पत्ति को साश्रु यशोदा की गोद में सौंप और भगवती की काला कला को अपनी गोद में ले कंस के द्वार पर सिधारे। परन्तु मैं तो उनका साथ न दे कर नन्द गाँव ही में रह गया।

थोडे ही काल के पश्चात् नन्द का गृह दिन सा जागृत हो गया बाबा नन्द मारे उत्साह के कूदने लगे। यशोदा तो अपने बच्चे की शोभा देख आनन्दाश्रु से आप्लावित हो गईं। नौबत घहरने लगी, मानो सुरलोक की सम्पत्ति मर्त्यलोक में आ बसने का समाचार मारे अहङ्कार के बहुमती नौबत मिस सुरलोक को भेजती है, अथवा राक्षस कुलों को अब भी चैतन्य

होने का प्रिय सन्देश देती, या यो कहिए कि नन्द गाँव स्वयम् नौवत के मिस गाने लगा। सुनते ही सुर लोक से सुर लोग भूलोक के महोत्सव को देखने चले। भक्तों के मौलिमुकुट, प्रेम की पवित्र नदी में सदा निमज्जन करने वाले, एक घर से दूसरे घर मे बिना पूछे समाचार पहुँचाने वाले भगवान् नारद तो मारे आनन्द के सारी रात आकाश में वीणा बजाते, और नर्तन करते ही रह गये। इस पुण्य अवसर पर सप्त ऋषियों ने व्योम में वेद पाठ किया। जब योगियों की प्राणप्यारी, वर्ण में भगवती राधिका सी, शान्तता में भगवती पार्वती सी, सदा सतयुग में निवास करने वाली, शकुन्तला सी रसीली सुन्दरी ऊषा भगवान् की अदृष्ट मगल आरती साज चुकी, तो कैलाश निवासी आशुतोष, योगिराज, भगवान् शकर आज प्रात॰ काल ही अपने प्रकाण्ड व्याघ्र चर्म को लपेट, भयङ्कर तथापि रूपवान सर्पों से अपने जटाजूट को बाँध, इत्र सा सारे शरीर में बड़े शौक से भस्म लगाए, हाथ में शृङ्ग ले, कैलाश छोड, भगवान् का दर्शन भिक्षा माँगने को नन्द के घर आ खडे हुए। यशोदा नन्द के पैरों पर पड रही हैं कि वे ऐसे विकराल स्वरूप वाले तपस्वी के समक्ष बच्चे को न ले जायँ। जिसके उत्तर में नन्द कहते हैं कि ये तो प्रत्यक्ष शकर से दीखते हैं। अन्तत नन्द के बहुत हठ करने पर उस देदीप्यमान, तेजस्वी बच्चे का दर्शन भगवान् शकर को प्राप्त हुआ। लेकिन भगवान् शकर को गोपिकाओं ने सैकडों झिड़कियाँ और अनेक अनकहनी बातें मार्ग में सुनाईं कि ऐसे समय पर ऐसा अभव्य दर्शन देने का प्रात॰काल ही क्या प्रयोजन था। यदि शिव होते तो उन्हें कैलाश छोडने की क्या आवश्यकता थी।

भगवान् शकर के जाने के पश्चात् मैंने देखा कि हर गाँव

से, हर घर से, हर कुटी से गोपिकायें भगवान् की मगल आरती साजे चली आ रही हैं मानों नूतन प्रभाकर की, सोनहरी किरणें व्यक्त रूप में आकाश से पूजा करने चली आ रही हैं। वे अपनी सुहावनी मगलाचार की गीतों द्वारा वायु से कहतीं, कि तू स्वर्ग में यह सदेश कह दे, कि यदि देवता वर्ग अपना जीवन सफल करना चाहें तो आज इस अपूर्व मग लोत्सव का दर्शन करें। उनके पाजेब कडे और छडे की झनकार से शान्त मन बैठा हुआ सारस भी तडाग में कूदने लगा। थोडे काल के पश्चात् नन्द का घर गोपिकाओं से भर गया। नन्द और यशोदा यह नहीं जानते थे कि कौनसी ऐसी प्रिय वस्तु है जो उन्हें न दे दें। आज ऐसा उत्साह और मगलमय प्रात काल कभी ब्रज ने नहीं देखा था। ऐसी अपूर्व मगलमय लीला और भगवान् के अपूर्व जन्मोत्सव को भगवती भक्ति देवी की कृपा से देख, मैं प्रसन्न मन घर के ठाकुर जी की मगल आरती साजने को लौट पडा।

अब की बार ठाकुर जी के पधारने से यह निश्चय हो गया कि भक्ति योग से और अधिक सरल तथा प्यारा दूसरा योग नहीं है। क्योंकि जिस दिन से घर में ठाकुर जी पधारे छोटा बडा सब उनके आतिथ्य और मेहमानदारी में तत्पर था। कोई अनेक प्रकार के पुष्पों के भाँति भाँति के आभूषण रचने में अस्तव्यस्त रहता तो कोई चित्र विचित्र सरस्लों मालायें बनाने में मालकारों के भी कान काटते। यदि कोई उनके पालने को नित्य नये ढग से सजाने तथा च शृङ्गार करने का काम करता, तो कोरम ने उन्हें अनेक अद्भुत अभिनयो के दिखाने का महाभार अपने सिर पर लिया। इन दिनों जिस ओर आप घर में जाये उस ओर ठाकुर जी ही की बातें सुन पडेंगी। यह

केसर की खौर ऐसी जान पडती मानो सारे शास्त्रों का व्यक्त या अव्यक्त प्रवाह है। मकराकृत कुण्डल कानों में ऐसा सोहता मानों दिशाओं की सकल सम्पत्ति यहीं लटक रही है। कविजन कहते हैं कि जब कामदेव ने देखा कि सारे रूप की सम्पत्ति और खानि इसी ठौर आ बसी है तो लज्जित हो अपना मकर केतु इन्हीं को दे दिया या गोप कामिनियाँ जो भगवान् के हृदय में निरन्तर बस रही हैं, मकराकृत कुण्डल के मिस अपने सारे आभरण को बाहर छोड भीतर प्रवेश कर गईं हैं कि जिनकी रक्षा बाल रूपी व्याल सतत कर रहे हैं। माया कैसी उलझाने वाली है, पर तौभी कैसी प्रिय है, इसके प्रत्यक्ष दृष्टान्त भगवान् के घूघर वाले बाल हैं। कहते हैं कि जब प्रकृति भगवान के इस शुभ शरीर को रच चुकी, तो देखकर अति प्रसन्न हो ठोढी पर एक अँगुली से मार दिया, जिससे कि वह ईषत् दब गई और रूप के सोने का ठौर और चक्षुओं की विश्राम स्थली हो गई। लाल और श्वेत गुञ्जों के गुथे हुए मुकुट पर सहस्राक्ष की समता करने वाले मयूर के पक्ष ऐसे सोहते हैं मानों कविता देवी मोर की आँखों मिस शोभा निरखने आईं, और गुञ्जों के मिस हँसती रह गईं पर कुछ कहते न बन पड़ा। करिकलभ के शुण्ड से लम्बे लम्बे हाथों पर मालाओं के भुजबन्द ऐसे भले लगते हैं मानों वसुमती ने पुष्प मिस अपने हाथों से मारे प्यार के उन्हें पकड लिया हो। लाल, पीले, श्वेत और अनेक वर्ण के पुष्पों से सजा धजा वक्षस्थल आकाश में निकले हुये नक्षत्रों की भाँति लख पडते या उससे भी अधिक मनोहर क्योंकि ये पुष्प नाना वर्ण के हैं। हाथ में केवल वंशी है जो कि [illegible] को एक ही बार मूर्छित करने में समर्थ है। कहते वंसी कभी बजी थी, न फिर बजे

गोपिकागण और राधिका ऐसी - उन्मत्त अवस्था में हो जाया करतीं थीं कि इस विष भरी बाँसुरी को कभी बजने नहीं देती थीं। और कौन जाने इसीलिये वंशी प्राय चुरा ली जाती थी। ऐसे रूपवान् प्रतापवान् महिमावान् भगवान् कृष्ण हमारे नव वनस्पतियों के हिंडोरे में विराजमान हैं जिनके वायें, दाक्षिण्य में लक्ष्मी सी, सत् चरित्रता में अनुसुया सी, नयनो की चपलता में चपला सी, रूप में गर्वीली भगवती रति सी, वर्ण में ओस से क्लिन्न गुलाब या कमल सरीखी, दारुण चरित्र वाले कृष्ण के साथ रहते हुए भी रसीली, या कृष्ण हृदय सरोवर में विचरने वाली मृणालिनी सी, कृष्ण पत्न में रहते हुए भी रानियों की रानी, जिसके रूप और दाक्षिण्य को देखकर कैलाश में बसने वाली हिमाद्री के शान्त हृदय में भी ईर्ष्या और द्वेष्यों की ऊर्मियाँ उठने लगीं थीं, श्याम की विद्युल्लता, बरसाने की द्वितीय चन्द्रिका सी भगवती श्री राधिका पधार कर, सारे विश्व के दुःख को हरती हैं।

देखिये शुम्बुल और पताल निम्ब भगवान को गोपिकाओं की भाँति चारो ओर से घेरे हुए हैं और प्रौढ़ा रतिप्रीता गोपिका सदृश फर्न लम्बी लम्बी तन्तुओं से लज्जा और अपने गुरुजनों का भय छोड़, सब के सामने ही गाढालिङ्गन कर रही हैं। मेडिन हेयर (शुम्बुल) मारे लज्जा के अज्ञात यौवना सरीखी इस धृष्ट भाव को देख दुबली हो गई है। सेण्टोनिसविकटेरा या नयन पत्री सहस्राक्ष सी उनके पैरों को चूम रही है और पिलानियाँ पूतना सी पड़ी अपने प्राण का दान माँग रही है। इन्हीं वनस्पतियों के बीच में एक कृत्रिम पर्वत से, लम्बे लम्बे शीशों की चट्टानों पर से एक झरना झूमता झामता भगवान् के दाहिने बगल में रहने के कारण बड़े अभिमान से झर झर

शब्द करता बहता दर्शकों का मन हरता है।

विविध कौतुक विहार।

तीसरे श्रृङ्गार में प्राचीन काल में वृन्दावन कैसा वन-बेलरियों से आच्छादित था जिसे नादान भक्तों ने साफ कर डाला इसकी समा दिखलाई जाती है। देखो आकाश से उतरी हुई माधवी माधव के चरणों को चूम रही है। कृष्ण के रंग की समता करने वाली कृष्णकान्ती पुष्प और अपने तन्तुओं की सप्रेम भेट दे मानों यह कह रही है कि देखो तुम्हारे प्रेम में हम भी श्याम हो गई हैं। श्रावणी ने भगवान के पैरों में अपने रक्त पुष्पों के मिस इस शुभ अवसर पर महावर लगाया और मन्दार पुष्पो, भक्त रसखान सी, खेलने के लिये श्वेत और बैगनी रंग के छोटे छोटे प्याले समर्पण कर, अपने जीवन को सफल मान रही है। राधालता ने तो इतना पुष्प और पल्लव दिया कि केले के मन्दिर का पता ही नहीं चलता था क्योंकि उसकी हरियाली सारे मन्दिर को श्यामायमान कर रही थी। विरह सन्ताप से कातर और दुर्बल, जिसके पल्लव केश बिखरे हुए अलग अलग झूम रहे हैं, अधरासव के पान हेतु पुष्प मिस अपने ओष्ठ पट को खोले हुये, चन्द्रावली सी, इस्कपेंचा चुपचाप अलग खड़ी है, और हरी हरी लम्बी शाखाओं वाली वे झगड़े के झगड़नेवाली, कुब्जा प्रौढ़ा नायिका सरीखी, बेतस लता द्वार पर बिना बुलाये हँसती खड़ी है।

अब आपको दिखाना चाहिये कि ठाकुरजी जङ्गल में मङ्गल कैसे करते हैं और यह दैवी कोरस अपने असीम प्रेम और भक्ति से अभिनयों को कर किस रीति से ऐसे प्रिय पूज्य पावन अतिथि को प्रसन्न करती है। और फिर भी वह सर्वथा अपने हृदय से यही मनाती है कि इस जङ्गल में ऐसे अभिनयों का

हो जाना ठाकुरजी की कृपा के अतिरिक्त और कौन कर सकता है।

अर्पण के हेतु दैवी कोरम ने भी, प्रार्थी हो, यही विचारा कि पहिले दिन इन्द्र सभा की जाय जिसमें कि इन्द्र महाराज प्रसन्न हों पर वे यह समझ कि यह उत्सव भगवान् कृष्ण के प्रसन्नार्थ हो रहा है, हमारी प्रसन्नता या पूजा के अर्थ नहीं, इससे रूठे ही रह गये।

दूसरे दिन का अभिनय हिमाकत उल्लाह बेग नाम का था। जिनकी डाढ़ी यद्यपि लम्बी और सफेद थी पर कर्म कृष्ण थे, शरीर जीर्ण हो गया था पर मन जवान ही था। धर्म करते पर दम्भ से, न कि ज्ञान से। इस अवस्था और इस श्वेत कुन्तल पर भी सीटी उसासें लेते न लजाते, और भगवान् कुसुमायुध से एक पकड लड जाने का दावा रखते थे। यद्यपि उन्हें इश्क माशूक के रूप में नित्य झाड़ू ही मारता पर वे उसकी गैल न छोडते। लडके हिमाकत उल्लाह बेग से बडे प्रसन्न थे। वे उनकी हर एक अदा पर हँसते और खूब शोर मचाते, जब कि हजरते इश्क उनकी फजीहत करते थे। और सच तो यह है कि सारी सभा इस विचित्र बुड्ढ़े रसीले नायक से अति प्रसन्न हो हँसती रही और कौन जाने नाटक के पश्चात् स्वप्न में भी द्रष्टागण हँसते ही रहे हों? यद्यपि इन्होंने सभा को तो प्रसन्न किया, पर धर्म महाराज रूठे ही रह गये; क्योंकि सत् चरित्रता उनसे मुँह मोड भागी थी। पर चूंकि यह शाही दर्बार है और भगवत् जन्मोत्सव है इससे यह बुलाये गये थे, क्योंकि इनसे अधिक रसीला और कोई भांड नहीं मिल सकता था।

तीसरे दिन कवियों के मौलिमुकुट, रसिकों को रसज्ञता का पाठ पढ़ाने वाले, श्रृङ्गर रस के एक ही निपुण चित्रकार या

अद्वितीय शृङ्गार कर्ता, मेघ को दूत बनाते हुए भी सहस्राक्ष या यक्ष नहीं, नाटक लोक रचयिता होते हुए भी ब्रह्मा नहीं, शृङ्गार रस के परमाचार्य्य होते हुये भी कुसुमायुध नहीं, जिस की तपोवन में विहरती हुई कविता देवी वेश्या वीथी में भी विचरती थी, ऐसे महानुभाव कालिदास का परम प्रिय नाटक शकुन्तला खेला गया था। जिसकी नायिका सुकुमारता में जूही सा, नखरे में उर्वशी सी, दिल लगाने में ज्यूलियट सी, रसीली दमयन्ती सी, सच्चरित्रता में भगवती अरुन्धती सी, प्रभा में लक्ष्मी सी, बिना अपराध पति से त्याग किये जाने पर स्नेहमयी सीता सी थी। यदि गुलाब और कमल ने अपना रंग सौंपा तो मृगी ने बड़ी बड़ी आँखों का उपायन किया, यदि मालती ने सरसता का पाठ पढ़ाया तो बिजाती ने मनोहरता का, यदि सारसों ने मन्थर गमन सिखलाया था तो खञ्जरीटों ने नैनों की चञ्चलता, यदि बुल्बुल ने उसे नम्रता का उपदेश दिया तो लजावती ने लज्जा और ब्रीडा सिखलाई थी। यह शकुन्तला सारे वन की सम्पति थी वा बादशाहजादी थी कि जिसे सारे वन के जीव और वनस्पतियों ने भी अपने अपने अपूर्व रूप और गुण का उपायन दिया था कि जिससे इस अरण्य की पाली पोसी अप्सरा की बेटी रूप और गुण में अद्वितीया हो, एक महामहिम महाराजाधिराज के मन के हरने में समर्थ थी।

ज्योंही यवनिका उठी और, दुष्यन्त हरिन के पीछे पीछे दौड़ता हुआ, सारथी से अनेक बातें, उस मृग की तीव्रता तथा अपने रथ के वेग की प्रशंसा करता और यह कहता हुआ कि अब वह मृग को लेही लेना चाहता है, निकला कि दो तपस्वी जिनके मस्तक जटाजूट से सुसज्जित और प्रशस्त भाल पर

भस्म विराजमान थी, उस मृग के त्राण करने को दौड़े और अधीर स्वर से कहा कि हे राजा यह आश्रम का मृग है इसे मत मारो मत मारो। तुम्हारे बाण क्रूर शत्रु के वक्षस्थल को विदीर्ण करने के योग्य हैं, न कि रुई से भी मृदुल इस मृग के शरीर को। जैसे कि शृङ्गार रसके भाण्ड, प्रेम की प्रत्यक्ष पान भूमि वा यावत् युवक जनों के मन को प्रेम की पुनीत नदी में स्नान कराने वाले, प्रौढ़ जन के हृदय में पुनरपि प्रेम बीज को हरित करने वाले, और श्वेत कुन्तलवाले वुड्ढ़ों को भूली प्रेम को गति स्मरण करानेवाले रोमियो जूलियट का पढना आरम्भ करते वैसे ही—एक पण्डित समालोचक का कथन है—हमें यह समझ पड़ता है कि मानों किसी दिव्य पुरुष ने अपनी कृपा से हमें एकाएक स्वर्ग के परम अद्भुत उद्यान में ले जाकर बैठा दिया है, वैसे ही आज परदा खुलते ही यह जान पड़ा कि मानो कालिदास की दया से इस छोटे से नेपथ्य में सतयुग आ बसा है। जिसमें धर्मज्ञ राजा और तपस्वियों के पुण्यप्रद दर्शन हुये, तपोवन के कन्याओं की प्रिय लीलायें लखाई पड़ी, जिन लता और वृक्षों को उन्होंने लगाया था उनमें उनका प्रेम निज परिवार के प्राणी सा झलकता था, प्राचीन काल में घर आये अतिथि को कैसा वे पूँजतीं थीं, इत्यादि प्रत्यक्ष देख चित्त हर्ष से आप्लावित हो गया। भगवान् की असीम दया और अनुराग कवि के परिश्रम से सहस्रों वर्षों का पुस्तक में बसने वाला विचित्र चित्र पुनरुज्जीवित सा कर दिया गया था। क्योंकि शकुन्तला को अनुराग जी ने गीत नाट्य रच कर दिखाया। जिसे देख पंडित जन कहते थे कि कालिदासपन किसी कोर से नहीं गया है, पर हम यही कहेंगे कि यह सब भगवान् कृष्ण की अपार माया है।

अस्तु, जैसी कुछ प्रिय जन्माष्टमी हमारे कन्हैयाजी श्री शीतलगंज में किया करते हैं और जिस भाँति इस छोटी सी कोरम और इस परिवार को अपना दास बना डाला है, वह कदाचित् अन्यत्र दुर्लभ है। जब वह परमात्मा चाहता है तब यौंही जंगल में मंगल किया करता है। पर हम सब सच्चे दास और भक्त हो उसपर पूर्ण रूप से निर्भर नहीं करते नहीं तो वह अवश्य नित्य ही नये मंगल और उत्सव दिखाया करे।

लखनऊ

सकल लोक को अपने पराक्रम से पराजय करने वाला, अरस्तू के शिष्य विषयक मनोकामना का पूर्ण पादप, जिसका पताका पराजय व्यभिचार की लज्जा से कुलवधू सरीखा सिकुड कर कभी लोक में हास्यास्पद नहीं हुआ, ऐसा विश्व विजयी सिकन्दर का यह प्रयत्न कि सारा विश्व एथेन्स सा पण्डित, विद्वान दार्शनिक, तथा सब कलाओं में कुशल हो जाय, नहीं हो सका, परन्तु रसिकों के मौलि मुकुट, कलियुग के ययाति, काम के एक ही सुपुत्र, नारद से सङ्गीतप्रिय, द्रौपदी से नृत्य में कुशल, वात्सायन से काम कला के विद्वान्, और उनके सूबे के हाफिज, बेपरवाही जिनके दामनों में लटकती घूमती, भगवान् कन्दर्प जिनके हृदय देहली में बसते, आखें उन्मत्त भ्रमर सा सदा अमल कामनियो के कमलानन वन में विहार करतीं, और जिनके कर्ण रात दिन अनेक सङ्गीत सरिताओं को समुद्र सा पीते हुए भी नहीं अघाते, रूप-राशि समुद्र के सुप्रसिद्ध मकर, अगस्त्य सा रस समुद्र पीकर भी, बाह्य वडवानल जिनका न शान्त हुआ, नल नील समान

सुमुखियों का सेतु बांधने वाले, इन्द्र से मर्त्यलोक में इन
सभा करनेवाले, सज्जनता और भक्ति के निधान, योगियों स
ग्रीष्म में जलशयन करने वाले, कामिनी कमल वन के भ्रम
स्वैरिणी मधु मक्खियों के भृङ्गराज, क्षमा में ईसा के तुल्य
कामकला के त्रिभुवन विजयी, उदारता में समुद्रसे, क्रोध जिन
कभी स्वप्न में भी नहीं हुआ, एपीक्यूरस और चार वाक के
भी शिक्षा देनेवाले, नवाब वाजिदअलीशाह की यह मनोकामन
कि सारा अवध और लखनऊ के मनुष्य सभ्य, सुशील औ
सङ्गीत प्रिय हो जायें, अहर्निश प्रेम की विविध गूढ़ ग्रन्थियं
को सुरझाया करें, निश्चय एक पक्ष कर सफलीभूत हुई।

इंगलैंएड की गवर्ड और कुटियों में चाहे भगवान् कन्द
न विचरते हों, पर लखनऊ के तो हर गलियो में वह देख
पडते हैं। दाक्षिण्य, चतुराई और नखरों में यहाँ की माशूक
स्वर्गीय माशूकों को भी लजा देती है क्योंकि इन विषयों का
पाठ यदि अप्सरा भी आवें तो उन्हें भी ये पढा देने में
समर्थ हैं। सकल लोक विमोहिनी भगवती सङ्गीत देवी, यदि
कहीं बसती ह तो यहीं। यदि 'मुर्ग बिसमिल' की लीला निर-
खना चाहते हो तो यहीं देख सकते हो, मजनू सा अपने प्रिय-
तमा का नाम ले ले आह भरते हुए, धूलि धूसरित केश किए
दीवाने आशिक यदि कहीं देख पडते हैं तो लखनऊ में। यदि
प्रेम से मूर्छित दीवाने दिलों का भी सरकार मान वा पूजा
कहीं होती तो इसी नगरी में, यदि मनुष्य कहीं भी विना दाम
कौडी के सारे जीवन के लिए गुलामी का पट्टा लिखाते हैं, तो
लखनऊ में। माशूकों की जूतियाँ, लात और डण्डे खाकर भी
उनके शरीर के कल्याणार्थ मसजिद और मन्दिर में दोआएँ
और मन्नतें मानते हैं तो यहीं के लोग। यदि गम गलतों की

गोल कहीं भी देख पड़ती है तो यहीं, और यदि पुराने जमाने के ऐतिहासिक अलहदी कहीं भी पाये जाते हैं तो यही। यदि प्रेम पादरी कहीं भी घर घर शिक्षा देता है तो लखनऊ में। अफीम खाने में चीन को मात करने वाले, विषय परायणता में पेरिस को भी लजाने वाले, मट्टी के खिलौने बना यूरप की कारीगरी को द्वेष उत्पन्न कराने वाले, और सिर्फ मुहर्रम के मातम के मनाने में इंगलैण्ड की साल भर की सञ्जीदगी और शान्तता को भी हरानेवाले, जहाँ शास्त्रों के आचार्य्य स्वैरिणी और वार वधू मानी जातीं, न कि पण्डित मोलवी वा प्रोफेसर, शास्त्रों के विविध गूढ अर्थ उनके कटाक्षों में, परिष्कार उनकी मन्दस्मित में, स्वर्ग और ब्रह्म लोक का सुख उनकी कृपा में और विज्ञान, काम कला में, मानते। जहाँ काबा, मसजिद वा मन्दिर प्रियतमाओं का गृह माना जाता, जहाँ दिल का सौदा होता न कि अर्थ का, जहाँ नेत्र दलाली करते न कि दलाल, विपत्ति वा दुःख माशूकों के रूठने में माना जाता, भौंहें कमान का काम करतीं, बरौनी भाला सी चुभती और तीखी तिरछी निगाहों का सामना तेज तलवार का सामना समझा जाता, जहाँ कुसुमायुध की कथा सुनी जाती, न कि सत्यनाराण की, यदि किसी की पूजा अर्चना की जाती तो माशूकों की, जहाँ के लोगों की अहर्निश आँखें अफीम के पीनक से उन्मीलित हुआ करतीं, न कि योग निद्रा से, अत्यन्त कृषित और दुर्बल तनु, विषय परायणता से, न कि तप से, मुख में चटेर बसती न कि राम या रहीम; हाथ में सुमिरनी फेशन के लिए रहती न कि भजन के अर्थ, असभ्यता चित्रों में, अश्लील भाषण भाड़ वा शुहदों में, तोड़ों की झनकार नृत्य में न कि द्रव्य में, अहङ्कार और औदार्य्य आ-

तिथ्य में, देखे जाते। निदान-यह खुशबू जो हमारे रसीले नवाब ने फैलाना चाहा था वह अब तक विधि की दया से सारे अवध में वर्तमान है।

वसुमती को अपने वचन पवन की अद्भुत शक्ति से पुष्पों मिस स्मित कराने वाला प्यारा वसन्त, यदि कहीं अपने सारे समाज से आता देख पड़ता है तो लखनऊपुर में। कविजनों ने इसे मारे प्यार के पुष्पों की नगरी वा रानी कहा है। ऋतुराज कैसे इस प्यारी नगरी में वसन्तोत्सव मनाता है, यदि देखना चाहते हैं तो बनारसी बाग (विनफोल्ड पार्क) में जाइये। वसुमती को कवियों ने क्यों रत्नगर्भा कहा है, तथाच वह कैसे सब रूपवानों और विविध वर्णों को अपने प्रसून मिस सजाती है, इसका उदाहरण प्रत्यक्ष देखने में आ सकता है। यहाँ के संगमरमर की बारहदरी नव युवतियों सी मानो अपने रूप से समय देव को ऐसा मोहित कर दिये हैं कि वह अद्यापि इसके रूप को न लूट सका या ऐसा कहें कि पुष्प सुन्दरियों के निरन्तर देखने से दिल जो जवान रहा तो शरीर भी जीर्ण न हुआ, इससे अब भी बीच पार्क में यूरपियन प्रौढ़ा कामिनी सी स्थित है, जिस पर आप यदि स्वस्थ सुमनस्क आ बैठिये तो भगवान् कुसुमायुध के अनेक कुसुम लीला महारास को सहज ही में देख सकते हैं। वा कौन जाने यही रसीले माननीय जनाब वाजिद्अली शाह की पान.भूमि ही रही हो। उक्त बारहदरी के चारो ओर फूलों के तख्ते साजे जाते हैं जो सत्यत. चार लोक वा पुष्पों की चित्रकारी हैं व फूलों में माला-कार की कविता है वा वसुमती की सांझी की सजावट है। इन विलायती वसन्त के पुष्पों को निरख के यद्यपि मैं इनके रूप का कुछ साधारण उपासक नहीं, पर जैसी मनुष्य की प्रकृति

होती है कि यह अक्सर अवगुणों पर ध्यान देता है, जो धकोल स्लाओं के सदा ऊपर ही रहता है, किन्तु इन वसन्त के पुष्पों के महत रूप सम्मति का देख प्रायः विधि को उलहना दिया करता कि उसने ऐसे रूपवानों को गन्ध गुणों से वञ्चित कर मधुकरों से क्यों अपमान का भाजन कराया, कभी इन्हें अपठित रूपवान् धनाढ्य कहता, कभी रूपवती कुलटा कामिनी, जिनमें कि सत्चरित्रता का आमोद नहीं, कभी नवनीत सी कोमलाङ्गी यवनीयो से समता देता जिन पर चाहे आप लाख दिल से निछावर हूजिये पर उनमें प्रेम आमोद की रसमञ्जरी न पाइयेगा, कभी ज्ञान शून्य अन्त करण से, जिसमें भगवत् भक्ति की सुगन्धि नहीं है, उससे समता देता, कभी कभी हँसी में यह भी कह देते कि ये यूरप के मनुष्य सरीखे हैं जो रूपवान हैं धनी हैं पर ईश्वर परिचर्य्या वा भक्ति प्रिय आमोद से नितान्त वंचित हैं।

सिकन्दर बाग में यद्यपि वसन्त उस तैयारी से तो नहीं आता पर इससे कि यहाँ एक वृक्षों का कुञ्ज है जिसमें आप घटों टहलते रहिए पर सूर्य की किरणें आप को न सतायेंगी, इससे मिलटन की तरह यह प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं होती कि "हे भगवान् सहस्र रश्मि जब आप सुन्दरी प्राची के पार्श्व को अनुरञ्जन करें तो खूबसूरत बादल रूमाल से मुँह ढापे हुए दिखाई पड़ें"। जिसमें मिलटन के प्रकृति अध्ययन में बाधा न पड़े। इसके वामपार्श्व में हरित दूर्वा नदी परिखा से युक्त पामवृक्ष रूपी पुत्र पोत्रों से भाग्यशाली शाहनजफ़ सैकड़ों वर्ष वाले फकीर की भाँति श्वेत कुन्तल संयुक्त, समय पर परिहास करता हुआ, स्थित है।

विक्टोरिया पार्क जो चौक के सन्निकट है एक हरित सागर

सरीखा है जिसके ऊँचे नीचे असमधरातल उसकी लहरों सा प्रतीत होता है और कहीं कहीं उसके वीच वृक्ष पालवन्द नौका से सुहाते। यह प्रशस्त लम्बा चौडा हरित दूर्वा का क्षेत्र पुनीत तपोवन सा है जिसके वीच वीच में चार चार छ, छः आठ आठ ढेर पाम के समूह मानों तपस्वियों के वृन्द से हैं जो विहङ्गमों के अनेक गाने मिस स्वाध्याय कर रहे हैं। या यह कहिए कि मरकतमणि की भूमि है जिसकी रक्षा करने के हेतु, ये सव चाक चौवन्द पहरूदार सरीखे चारो ओर खडे हैं और कोयल पपीहों के निरन्तर कूज ने मिस सव को उस पर चलने से मानो वारण से करते हैं।

प्रकृति कैसी सुहावनी है, इसको विक्टोरिया पार्क प्रत्यक्ष सा करता है और यह भी प्रमाणित करता है कि चार्वाक का चेला चौक कितना गर्हित और त्याज्य है। जितनी देर कि आप चौक में नजारेवाजी के लिए घूमते या शौक से चहलकदमी करते हैं या लखनऊ शाम को कैसा वना ठना है यह देखने उसकी वीथियों में विचर रहे हैं और हरेक श्वास में धूलि और धूम्र को छान के पीते पीते ध्वस्त हो गए, और आँखें कडुवाने लगीं पर तृष्णा यही कहती कि कौन जाने कि किसी सुन्दरी का अपूर्व दर्शन हो जाय जिससे जीवन और चक्षु सफलीभूत हो जायँ, पर सन्तोष और विवेक के समझाने पर ज्योंही चौक से वाहर निकलते हैं तो सहस्रों वनस्पतियों से सुगंधित पवन प्रत्यक्ष प्राण दान देने लगता, मन जो कूप मण्डूक सा एक छोटी सी गली में वन्दी कृत था वह अव आकाश के चारों छोर का अधिपति हुआ, नक्षत्र परियों सा आकाश में मुस्कुराते देख पडते, भगवान कलानिधि तो मारे प्यार के उसके हरित लान (Lawn) पर मानों सोना चाहते हैं। निदान यदि थोड़े में यह कहें कि चौक में यदि माया विषय

और अविद्याओं की लीला है तो उक्त पार्क में शान्ति और प्रकृति के सौन्दर्य्य का औदार्य्य है, और ऐसाही अनुभव मनुष्य को उस समय भी होता है जब वह इस जगत के सुखों से विरक्त हो, उस निर्मल देश की ओर बढता है तब हरक्षण जैसे आप चौक के पश्चात् विक्टोरिया पार्क की प्रशान्त मर्मस्थली को प्राप्त कर कहते कि जान आ गई, प्राण बच गए, ठीक वेसाही तो ज्ञानी और भक्त भी कहा करते कि ससार के लोहे की चक्की में पिसने से बच गए और-विषय तृष्णादि की गुलामी से छुटकारा मिला, शान्ति उज्वल और पवित्र लोक में मन रमने लगा।

इसके पार्श्व में अजुमन हाल है जो अवध के नवाबों की तसवीरों से सुसज्जित है। इन चित्रों को ध्यान पूर्वक देखने से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि कैसे एक राज्य उन्नति और सम्पत्ति को प्राप्त कर, धीरे धीरे इन विषय अमीरी-डाइनें उन्हें प्रमादी और बेखबर बना, राज्य की पदवी से उतार पुन. प्राकृतिक मनुष्य सा कर देती है। आसफुद्दौला इत्यादि जो फैजाबाद और लखनऊ के बसाने वाले हैं उनके नेत्रों को देखने ही से त्रास, भय, मान, और प्रतिष्ठा उपजती है उनके वपु पर ध्यान देने से उनके वीर्य्य पराक्रम और साहस का पता चलता है, पर ज्यों ज्यों आप नीचे की पीढ़ी के नवाबों को देखिये त्यो त्यो मालूम होता है कि कैसे विषय आलस्य तन्द्रा और अमीरी धीरे धीरे उन्हें पराजय करती चली गई और जब अन्तिम नवाब वाजिदअली शाह साहब को देखिए तो आपको शोक से कहना पड़ेगा कि अमीरी रोग ने अब अपना इनपर पूरा अधिकार जमा लिया और अब ये रणश्रम या धूप में गरत करने योग्य नहीं रह गए तो फिर राजभार का

गुरुतर भार इन से कैसे सँभल सकता है। मुगल बादशाह जब तक कि अपने को सिपाही सा रखते थे, और इस शरीर को फोडे के समान नहीं पालते थे, तब तक जगत को ललचाने वाली दिल्ली के महत् तख पर आरूढ़ थे। पर जब कि वह अपनी राज्य-रानी से न सन्तुष्ट हो आलस्य अमीरी और तास्सुब इत्यादि रानियों के वशवर्ती हुए तब से धीरे धीरे उनके हाथ से राज्य लक्ष्मी चली गई।

इसके पश्चिम छोर पर हुसेनाबाद अपने हुस्न पर और शीशे आलात रूपी दैवी अद्भुत सम्पत्ति पर उन्नत कन्धर, परमात्मा को धन्यवाद देते देते जिसका मस्तक नमाजियों सा काला हो गया है, स्थित है। वह देखिये विक्टोरिया टावर अपने चतुर्दिक् देखता हुआ मानो मन ही मन कहता कि अब भी क्या कोई अँगरेज़ों में ऐसा प्रतापी कीर्तिवान् समृद्धिवान् और पुत्रवान् बादशाह होगा? विक्टोरिया ऐसी शाहन्शाह-जादी अब कैसे पुन इंगलैंड देख सकती है और रानी मालती जो इसे अङ्क में लिपटाए हुए है यह हलचल देख प्राय पूछा करती कि मैं कैसे सुरक्षित रहूँगी। अथवा यह टावर लखनऊ के अइय्याशों सा है जो सब से ऊँचे खडा हो आँखो से परी जादों को घूरता घूरता प्रत्यक्ष जड सा हो रहा है। इन्हीं उद्यानों के एक कोने में उदास मन, समय के परिवर्तन से दुखी, प्रकाण्ड शरीरवाला पुण्यात्मा मच्छी भवन शान्त, मन ही मन में नमाज सा पडता हुआ चुपचाप खडा है। कैसर बाग में हम कभी नहीं जाते क्योंकि इसके देखने से जी दुखी होता है। इससे कि जो अप्सरा सरीखी यवनियों की विहार स्थली थी वहाँ एका और गाडी खड खडाते हे, जिन महलो में चन्द्र मुखियों के पूर्णचन्द्र आनन देख पडते वहाँ सुफेद दाढ़ी वाला

कोई कुत्सित मकान का रखवार भृत्य निष्कर्म मक्खी मारता हुआ दिखाई पड़ता है। जहाँ सङ्गीत के सरस सुर के आकाश सुरीला हो जाता था वहाँ अब साईप्रेस Cypres और सरो के वृक्ष पुरानी विस्मृत गीत को धीरे धीरे डर से साँय साँय करते गा रहे हैं। जिस बारहदरी में प्रत्यक्ष अप्सरियों का अखाड़ा उतरा करता था, वहाँ अब कपोतों का करहना या उनके पखों की फड़फड़ाहट सुन पड़ती है। जहाँ बड़े बड़े से आदमियों के जाते पैर थर्राते थे वहाँ मनुष्य की कौन कथा, अब खर और खच्चड़ चरते दिखाई पड़ते हैं।

चूंकि बूढ़े वेली गारद की कथा प्राय: सभी ने गाई है इससे मैं गोलियों से छिन्न भिन्न जीर्ण दिवालो की कथा जिसमें अब केवल उल्लू और भूत मात्र रहते हैं क्या सुनाऊँ।

लखनऊ वाले अपने धजहदारी शऊर सलीका और अपने इल्म महफिल के कुछ ऐसे कायल हैं कि वे किसी और शहर को इन बातों में सनद ही नहीं देते। अपने नगर के अभिमान में प्राय कहा करते कि अल्लाह तआला ने दूसरा ऐसा खित्ता खल्क में पैदा ही नहीं किया है। कोई कहते कि दिल्ली के शाहशाह लोग चाहते ही रह गए कि बुड्ढी दिल्ली को भी वह हुस्न और जमाल दें, ताकि एक बार हुस्न से इतराती बीबी लखनऊ भी झेंप जाय पर यह न हुआ और उन सब का अरमान दिल ही में रह गया, क्योंकि खुदा दाद हुस्न को बनावट कैसे पा सकती है? कोई कहते कि हिन्दोस्तान में लखनऊ एक ज़ाफरान का टुकड़ा है और इसकी खुशबू को बिचारी बुढ़िया दिल्ली कैसे पा सकती है। यदि आप कहीं भूल से कह दीजिए कि पेरिस कुछ लखनऊ से कम वैषयिक शहरदार सभ्य तथा शिष्ट नहीं है तो वे सब एक दम ही बोल उठेंगे कि

तोबा, तोबा कभी आप ऐसी बातें जबान शरीफ पर न लाइए क्योंकि ख्वाब में भी तो कभी जङ्गली चुड़ैल पेरिस लखनऊ का मुकाबिला नहीं कर सकती, और सच तो यह है कि अभी बीसों बरस पेरिस आकर लखनऊ की जूतियाँ उठाए पेस्तर की शऊरदारी का दम भर सकती है! एक साहब कहने लगे कि मैं तो यहाँ तक कायल हूँ कि जो लोग यूरप की सैर करने जाते हैं वे निरे भोंडे और बेशहूर होकर लौटते हैं हमारे यहाँ की दो तीन माशूक जो वास्तव में पगी पैकर थीं पेरिस के हुस्न नुमाइश में तशरीफ ले गई थीं, और वहाँ बुलडागों से आँखें लड़ा के जो आईं तो नतीजा यह हुआ कि बएवज आशिकों के बग़ल में बैठने के अब बदतमीज नालायक उनके बगल में बैठते हैं। बएवज पेचवान लगाने के, जिसकी खुशबू से दीवान खाना भी मुअत्तर होता था, अब सिगरेट और चुरट की बदबू से वहाँ बैठना दुश्वार होता है। दूसरे साहब कहते कि वहा जाने की कौन कहे जो सिर्फ उनका इल्म ही पढ लेते हैं उनमें ऐसी ऐसी नाजायज हरकतें और बेशऊरी आ जाती हैं, मसलन खड़े होकर पेशाब करना, टोकरी सी सिर पर टोपी रखना, चलने में घोड़ों को मात करना, वगैरह जो कि शराफ़त के बईद है।

लखनऊ वालों का यह अभिमान सर्वथा व्यर्थ नहीं है। जो शऊरदारी, मेहमानदारी, सभ्यता, लखनऊ वलों में है वह और नगरों में प्राय: दुर्लभ है। इसी से जब किसी और नगर के मनुष्य यहाँ आते हैं तो उनकी चाल ढाल देख, यदि लखनऊ वाले मजाक कर बैठते हैं तो कभी कभी वे लोग उन से रुष्ट भी हो जाया करते है और क्रोध में कह बैठते हैं कि लखनऊ तो एक मसख़रों की बस्ती है। जो कुछ हो ब्रज के पश्चात्, यदि प्यारी

भाषा कहीं की है तो लखनऊ की, यदि गोरी उर्दू हर गलियो में किसी नगर की झाड़ू लगाती है तो यहाँ, यदि कहीं बोलने में शहद या फूल झड़ता है तो लखनऊ के माशूक़ों ही की ज़बान से। ऐसा कुछ प्यारा यह लखनऊ नगर है कि लोग कहते हैं, कि नवाब वाजिदअलीशाह ने मटियाबुर्ज जाना कबूल किया पर इसे गोली और तोपों से छिन्न भिन्न होने नहीं दिया।



शरद्

घन घेरो छुटिगो हरषि, चली चहूँदिसि राह।
कियो सुचैनो आय जग, शरद सूर नर नाह॥



कास के विकास मिष जटिल तपस्वी सा, नदियों के निर्मल और शान्तता से बहने के मिष जोगियों सा, जलपक्षियों को इस ताल से उस ताल में भेजने के मिष कप्तान सा, प्रात काल वृक्षों से हिमाश्रु गिरा प्रिया से विरहित प्रेमी सा, फरवनों के सुस्वाद फल से सञ्चित कर पक्षियों को सदावर्त बाँटने मिष नृपति सा, कमलवन में मधुकरों के झङ्कार मिष वेदपाठियों सा, खजरीटों को चतुर्दिक् भेज कामिनियों को कटाक्ष निक्षेप की शिक्षा देनेवाला, प्रात काल सारे वनस्पतियों को हिमकणों से सुसज्जित कर मोतियों की खेती करने वाला, हिमालय राजधानी से सहस्रों कर्डोकुलों को भेज दीन भारत की व्यवस्था पूछने वाला, क्षेत्रों में किसानों के सहस्रों हाथा चलाने मिष ब्राह्मण सा मार्जन करने वाला, आर्द्र होते हुए भी निष्ठुर, कमलों को पुष्पित करते हुए भी बसन्त नहीं, नीलाम्बर धारण करते हुए भी कृष्ण नहीं, खेतो के पानी भरे नालों के झरने चलाते हुए भी पावस नही, निर्मल चाँदनी को प्रकाशित कर,

सकल समान साज भगवान् कृष्ण के महारास की अज्ञानता से प्रतीक्षा करने वाला, ग्राम के धूम्र राक्षसों को आकाश में भागते हुए पकड़ कर, काला मुँ किये चुगुल सा बीच ही में लटकाने वाला, एक ताल के पक्षियों को दूसरे ताल में भेज पक्षियों में सम्मेलन कराने वाला, आकाश में अनेक कन्दीलों को टाग नक्षत्र लोक की विडम्बना करनेवाला, स्नान करने को जाती हुई अनेक गाती हुई अबलाओं के गाने मिष नारद सा भगवान् का कीर्तन करने वाला, रात्रि में पानी के जलकुकुटों के कलरव मिष भीमसेन सा अनेक बेसुरी तान लगाने वाला, ओस क्लिन्न वृक्षों को चाँदनी रात्रि में मणि से जटित करने वाला, प्यारा शरद आकर आकाश को स्वच्छ, भूमि को पङ्कहीन और वसुमति को सुहर्षित कर दिया।

इस हिमकाल के निर्मल गगन में कभी शरद धुनियाँ सुफेद बादलों के रुई के लच्छे वायु से विधूनित कर देवगणों के शीत के कपड़े भरने का सामान करता है, कभी पराक्रमी महावीर सा शरद अपने वायु मस्तक पर सहस्रों हिम सिखरों के समान बादलों को लिए इधर उधर घूमता है। कभी शरद के श्वेत बलाहक ऐरावत के पुत्र प्रपौत्र सदृश किसी भाँति बन्धन से मुक्त हो, उत्कट मद से उन्मादित आकाश अकूल में भागते फिरते हैं ; कभी बादलों की फाँफी की लहरें यह जान पड़तीं मानो हिम नदी स्वर्ग से चली पर पुण्य विशेष के कारण पृथ्वी पर नहीं गिर सकी वा यह जान पड़ता कि वरुण देवने सहस्रों रूप के द्वीप आकाश महोदधि में बसा दिये हैं। इस ऋतु में आकाश ऐसा नीला हो जाता है कि वह भगवान् विष्णु के तन की शोभा धारण करता है और भगवान् मरुतदेव जी जाड़े के आगमन की कथा कहते और वनस्पति लोक को

उपदेश देते है कि उनके गिरने का समय निकट है जो कुछ जप तप करना हो कर डालें। भगवती वसुन्धरा अपने जीर्ण परिच्छद को उतार इक्षुकाण्ड के मिष स्वर्णमय कुन्तलों का प्रसाधन कर, नूतन गेहूँ की हलकी धानी सारी पहन, हरे हरे अरहर का दुपट्टा ओढ, पुनः नई दुलहिन सी हो जाती है। मैं ऐसे सुखमयी और पवित्र सरस समय में प्रायः ग्राम के खेतों में विचरा करता हूँ, कभी घरटों अरहर की छाया में बैठा मीलों तक फैले पलिहर की शोभा देखता, कभी मटर की घनी हरियाली को सराहता, और कभी चना को खोटाई के ग्रास से काला होता देख, हँसता। कभी सरोवरों को देखता कि सारे आकाश को उन्होंने अपने अन्तःकरण में प्रतिबिम्ब मिष बसा दिया और तटस्थ वृक्षों की शोभा भी अपहरण करने लगे, जिसे देख वे ईर्ष्या से काँपने लगे, जिसमें कि उनका यथार्थ प्रतिबिम्ब उसमें न पड़े। कभी छोटी छोटी नदियों को नित्य प्रति घनश्याम के विरह से क्षीण तनु होते देख दुखी होता। कभी कुमुदिनी वन में सारस के बड़े विचार पूर्वक चलने पर कहता कि पण्डित भी तो ऐसा ही चलेगा ज्ञानी भी इसी प्रकार और प्रेम से मूर्छित भी इन्हीं के सदृश। और जब वे गर्दन उठाकर गाने लगते तब तो शरद की सब दिशायें उन्हीं के साथ गाने लगतीं। कभी दुपहर को वनों में किसी मधूक वृक्ष के सघन छाया के तले बैठे देखते कि वन, परमहंस सा, शान्त और सौम्य चुपचाप अनन्य ध्यान लगाये खड़ा है। कभी घास छीलती हुई घसियारिन के प्रेम की गीत सुन कहते कि सरसता सबी के हृदय में कुछ न कुछ रहती है। कभी चरवाहों से भूत और पिशाचों की कथा सुन हँसते और फिर कानन में अन्तर्लीन हो जाते। कभी सहस्रों लाल चुडुके और

घटेरों को, जो आनन्द पूर्वक अरहर में बैठे चुन रहे हैं, एक ताली बजा कर उडाने का सुख लेता। इस प्रकार अनेक कुतूहलों के साथ शरद का आनन्द अनुभव करते हैं।

प्रावृट् और शरद में इतना ही भेद है जितना विषयी और ज्ञानी मनुष्य में। यदि एक प्राणी मात्र को घर बैठने की शिक्षा देता तो दूसरा देश देशान्तर जाने की आज्ञा देता। यदि एक चञ्चल तो दूसरा शान्त का प्रत्यक्ष स्वरूप। यदि प्रावृट् गवहियों सा गाढा रङ्ग पहिनता तो शरद नागरिकों सा हल्का रङ्ग पसन्द करता। यदि वर्षा का मुख काला तो शरद का शुभ्र यदि एक गरज कर सब को डराता तो दूसरा कृष्ण सा नीला आकाश दिखा मन को लुभाता है।

मिरजापुर के अन्तर्गत अमीरटोला में मैं एक मित्र के यहाँ गया था। एक दिन हम सबों की राय पडी कि मगन दिवाने के पर्वत पर शारदीय छटा देखने चलें, अतएव हम सब मगन दिवाना को रवाना हुए। चलते चलते जब इस पर्वत की चोटी पर पहुँचे तो देखा कि वह पारिजात (हरसिंगार) वृक्षों से आच्छादित था और बीच में बीबी कहानी ।के राक्षस का खना हुआ एक बृहत् तालाब है जो ऐसा तृणों से आच्छादित है कि जल देखता देख ही नहीं पडते थे। जब हम सब सन्ध्या के नित्य कर्मों से छुट्टी पाए तो पश्चिम दिशा को भगवान् प्रभाकर को सनाथ करते देखा। वसुमती की शोभा ऐसी विचित्र, प्यारी और भली देख पडी, कि मैं अचम्भित सा होगया, और वाह वाह करने लगा। मैंने कहा दुष्यन्त स्वर्ग से उतरते हुये वैसे ही प्यार भरे चक्षुओं से वसुमती को निरखे होंगे, वा जब भगवती सीता वर्ष भर के कारागार से छूट, भगवान् रामचन्द्र के पार्श्व में पुष्पक विमान पर बैठ ऊँचे आकाश से

उमडते हुये महोदधि कानन और शैल को ऐसे ही प्रेम भरे नैनों से देखी होगी, रोडरिक की चमकती कटार के आघात से मूर्च्छित हो पुनर्जीवित फिट्स जेम्स भी ऐसे ही प्यार भरे चक्षुओं से पृथ्वी और आकाश को प्रणाम किया होगा। ऐसी प्यारी पृथ्वी उस समय देख पडी कि जैसा कविता देवी कदाचित् उन अनेक दृश्यों और रंगों का वर्णन कर सकती, यदि स्काट के कथनानुसार प्रकृति चित्रकार अपने रंगीन दावात में कलम को डुबोने देता।

उस समय कहीं जोते हुये धवलित पलिहर के खेत चाँदी के पत्र सदृश चमक रहे थे, कहीं निकले हुए गेहूँ के खेत ऐसे हरे भरे देख पडते, मानो हरियाली स्वयम् डेरा डाले उस खेत में पडी है। कहीं सूर्य्य की किरणों से चमकता बरहा चाँदी के शलाका सा जान पडता और हाथा के पानी से बिखरे जलकण इन्द्र धनुष की शोभा दिखाते। हम सब पश्चिम की ओर जब पुनः परिक्रमा करते पहुँचे तो देखा कि भगवान् प्रभाकर ने पश्चिम के समुद्र के स्वर्ण मन्दिर को प्रस्थान किया, और सारी दिशा स्वर्णमयी हो गई। किन्तु प्रलम्बायमान हरितक्षेत्र जिनके बीच में छोटे पर्वतों की शृङ्खलायें ऐसी जान पडतीं मानो हरित जल नदी के सेतु हैं अथवा हरित समुद्र के द्वीप हैं। अथवा पर्वतों को हरित मेखला प्रकृति ने पहिनाया है। कहीं हरित क्षेत्रों के बीच में अमराइयों की शोभा कुछ और ही दील पडती मानो हरी फ़र्श के आम्रवृक्ष मीर फर्श हैं अथवा परीज़ादो के बीच में वे राक्षस हैं। इस पर्वत के पूर्व की ओर एक विस्तीर्ण भील है जो कमल और कुमुदिनो से हरा भरा और चतुर्दिश हरे जटहन से घिरा हुआ बहुत हो भला लगता है। भगवान् प्रभाकर के अस्त होने से कमलिनी तो परम सकुचित जल में

अन्तर्लीन सी हो गई थी परन्तु कुमुदिनी तो प्रसन्नता से पुष्पित हो भगवान् निशानाथ की बाट जोह रही थी। चरवाहे अपने गौ और भेडो को बुलाते थे कि अब स्वच्छन्द घूम घूम कर तृण चरने का समय आ गया, आओ अब घर चलें। इस समय कहीं भेडो के उतरने से पर्वत का पर्वत श्याम हो रहा था। कहीं दिन भर के मूँ छिपाये हिंसकजीव अपने गह्वर के बाहर निकल जँभा रहे थे, कहीं हिरनों के गोल अपने नायक के पीछे धीरे धीरे हरित तृण को देख प्रसन्न होते चले जा रहे थे। कहीं जङ्गल के बाहर शृगालों के गोल एकत्र हो भगवान् प्रभाकर के चले जाने पर शखनाद सा कर रहे थे जिस हर्ष का दिशाएँ प्रतिवाद कर रहीं थीं।

हरेभरे क्षेत्र, नूतन पत्रावलियों से सुसज्जित कानन, नक्षत्रों से जटित आकाश, शुक्ल पक्ष की निशा, वा राक्षस सा चढा आता हुआ तूफान वा दूसरे समुद्र सी, विस्तृत झील, वा घुडदौड सी करती हुई नदी वा ऊँची लहरें लेकर, भगवान् चन्द्रमा के चरणों को चूमने का प्रयत्न करता हुआ महोदधि, इन सब अपूर्व दृश्यो में हमें उसी परमात्मा परमेश्वर की शोभा दिखाई पडती है और इसी से कौन जाने प्रकृति देवी इतनी हमें अपूर्व और विलक्षण देख पडती है। और सच भी है क्योंकि स्वामी से बिना लगन के लगाये आप कैसे उसकी कारीगरियो को सम्यकरूप से सराह सकते है। कहते है कि ऊँचे चढ़ जाने से प्रकृति की शोभा, अत्यन्त उत्तम और सराहनीय लख पडती है परन्तु मेरी समझ में जब मनुष्य अपनी आत्मा में सम्यक स्थित हो, परमात्मा के प्रेम आसव को पूर्ण रूप से पान कर लेगा तभी ऋतुओं की छटा दिखा पडेगी और तभी शारदीय प्रभात और सध्या का पूर्ण रूप से अनुभव मनुष्य कर सकेगा।

इति

रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से यूनियन प्रेस, प्रयाग में छपा।

